Vol. XIX, January-December 2022
Issue No. 1,2 & 3 Combined

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities

Editor in Chief
Dr. Surendra Pandey
Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Executive Editor
Dr. Santosh Bahadur Singh

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, 9868477818, 9470828492 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi
Mob. 9968628081, 9555149955, 9013387535, Email: akhandpublishing@yahoo.com

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editor

(i) **Dr. Vikash Kumar**
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Sri Varshney College, Aligarh, U.P

(ii) **Dr. Shailendra Kumar**
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Executive-Editor

Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Co-Editor

Dr. Ripunjay Kumar Singh
Assistant Professor, Hindi,
S.N.R.K.S. College, Saharsa (Bihar)

Sub-Editor

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor,
BRM College, Munger
Munger University, Bihar

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

SHODH

......A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons

Dr Jai Ram Singh

Principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
9. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
10. Dr Nirmla Kumari, Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
11. Dr Varsha Singh Associate Professor English Department, Deshbandhu College, University of Delhi.
12. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
13. Dr O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
14. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Teacher University, Delhi.
15. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
16. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

17. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.

18. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.

19. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.

20. Dr Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).

21. Dr Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. ठाकुर जगमोहन सिंह एवम् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में काव्यतत्त्व — 3
—डॉ० भारतेन्दु कुमार पाठक

2. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का समीक्षात्मक दृष्टिकोण — 6
—डॉ० अरुण कुमार मिश्र

3. जैव विविधता-भारत में जीव विविधता का एक भौगोलिक अध्ययन — 17
—डॉ० राजीव कुमार

4. भारत विभाजन की त्रासदी और अज्ञेय के 'शरणार्थी' — 27
—डॉ० प्रियदर्शिनी

5. आदिवासी साहित्य का अन्य साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन — 35
—दीपक ठाकुर

6. हरिशंकर परसाइ की रचनाएँ: मानवतावादी परिप्रेक्ष्य के आलोक में — 42
—अनुपमा कुमारी

7. हिंदी की प्रमुख बोलियाँ और उनके अन्तरसंबंध का अध्ययन — 46
—नीशु यादव

8. शिक्षा में आईसीटी और आईसीटी का महत्व — 52
—रोशन पांडेय

9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : समतामूलक और समावेशी शिक्षा — 60
—डॉ० लालमणि प्रजापति

10. भारत में उपभोक्ताओं के वस्तु - क्रय व्यवहार का अध्ययन — 67
—डॉ० पवन कुमार गुप्ता

11. ईशावास्योपनिषद् में मानव जीवन के मूल कर्त्तव्य — 73
—डॉ० देवेन्द्र कुमार

12. उत्तर–औपनिवेशिकता के आलोक में अज्ञेय और निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन 79
—डॉ० विकास कुमार

13. प्रवासी हिन्दी साहित्य : अवधारणा एवम् स्वरूप 92
—डॉ० विकास दुबे

14. दलित संघर्ष और दलित उत्कर्ष मीमांसा 96
—डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

15. नयी कविता एक पुनर्मूल्यांकन 100
—डॉ० विकास कुमार

16. समानता के प्रबल समर्थक : भीम राव अम्बेडकर 106
—डॉ० समरेन्द्र बहादुर शर्मा

PART–II

1. The Problems of Being Creative 3
*—*Dr Sanjeev Kumar Bansal & **Prof Sharmila Saxena*

2. Reform in United Nation Organisation: Especially Security Council 10
—Pritam Kumar

3. Predominant Role of Rural Production and Consumption Process in Developing Indian Economy 16
—Dr Gunjan Agrawal

4. Relevance of Babasaheb's Thoughts in Current Scenario 26
—Dr Anil Kr. Bharti

5. Swami Vivekananda's Contribution Regeneration of India 31
—Shubham Rai

6. Genealogy of Divine Procreation in the Jātakas 36
*—*K. Prasant Shekhar , **Dr Beauty Bhagat*

7. Nature - Human Interface : An Ecocritical Study of Anita Desai's Fire on The Mountain 45
—Dr Vipin Pratap Singh

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

PART – I

ठाकुर जगमोहन सिंह एवम् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में काव्यतत्त्व

डॉ० भारतेन्दु कुमार पाठक
सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल, श्रीनगर

ठाकुर जगमोहन सिंह हिन्दी के अप्रतिम रचनाकार हैं। 4 अगस्त, सन् 1857 को मध्य प्रदेश के विजयराघव गढ़ रियासत में जन्म लेने वाले ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम भारतेन्दु युग के सर्वाधिक प्रतिभाशाली रचनाकारों में प्रमुख हैं। मात्र 15 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने कालिदास कृत ऋतुसंहार का उत्कृष्ट अनुवाद किया। कहा जाता है कि शिवरी नारायण में रहते हुए ठाकुर जगमोहन सिंह को श्यामा नामक एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री से प्रेम हो गया। इस सुन्दर स्त्री के प्रेम में ठाकुर जगमोहन सिंह इतने डूब गए कि उन्होंने उसे केन्द्र में रखकर श्यामास्वप्न, श्यामा सरोजनी, श्यामालता-जैसी उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन किया।[1] श्यामा संबंधित ग्रन्थ इनके मौलिक है। "ठाकुर साहब के सवैये की बहुत सरस होते थे। अनेक श्रृंगारी कवित सवैयों का संग्रह कई पुस्तकों में है।"[2]

पुनरुक्ति प्रकाश व यमक संबंधित रचनाएं मन को छू लेती है-

"झरना झरना मरना ध्रुव मोर के अंतकहूँ टरना जिय सों।
हरना डरना मुहि देहु बताय, तुम्है दुख मो हरना हिय सो।
हरना सुनु हौं झख केतु अबौ दरना मन मो विरहातिय सो।
जगमोहन अंत अहै परना तन पाले वियोग बिथा पिय सों।।"[3]

उसी प्रकार इस छन्द की कलात्मकता दर्शनीय है-

"हे कचनार कइ कच नागिनि कोकिल-कोकिल बनी बसी कहुँ।
दाडिम दाडिम दन्त दुखी मृग लोचनी के मृग टोंको दिखी कहुँ।।
श्यामा सरोज मुखी़ तऩ सामऱी श्यामालता सुभली बिलखी कहुँ।
दै जगमोहन दौरि बताय चित्यौरी चित्यौर में ऐसी लिखी कहुँ।।"[4]

ठाकुर जगमोहन सिंह ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। उन्होंने अपना ध्यान सदैव रस पक्ष की ओर रखते हुए काव्य रचना की है। कहने का भाव है कि उनकी कविता हृदय पक्ष को

प्रस्तुत करती है–

"अब यों उर आवत है सजनी मिलि जाउँ गरे लगिके छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रस की बतियाँ।।
हम हारी अरी करि कोटि उपाय लिखिबहु नेह भरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनि मूरति के बिन कैसे कटे दु:ख की रतिया।।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। "भारतेन्दु ने जिस प्रकार हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार किया, उसी प्रकार काव्य की ब्रजभाषा का भी। उन्होंनें अपने रसीले सवैए में जहाँ तक हो सका, बोलचाल की ब्रजभाषा का व्यवहार किया। इसी से उनके जीवन काल में भी उनके सवैए चारों ओर सुनाई देने लगे।"[5]

भारतेन्दु ने अनुप्रास अलंकार का मुधर प्रयोग किया है–

"कूके लगी कोइलैं कदंबन पे बैठि फेरि,
धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगै।"

तो पुनरुक्ति प्रकाश भी आ गया है–

"फेरि झूमि झूमि बरसा की रितु आई घेरि।
बादर निगोरे झुकि झुकि बरसें कहाँ।।

अन्यत्र भी–

''काले परे कोस चलि चलि थक गये पाय,
सुख के कसोले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे,
मदन के पाले परे प्रान परबस के।
हरीचंद अंगहू हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले पर तन बल उसके
मगन में छाले परे नाधिबे को नाले परे,
तरु लाल लाले परे रावरे दरस के।।

यमक का सुन्दर उदाहरण देखिए–

''परसों के बिताय दियो बरसों तरसो कब पाय पिया परसों।।

तो 'रूपक' का स्वभाविक प्रयोग भी उपलब्ध है–

''छाँड़ि संकोचन चंद मुखी भरि लोचन आज निहारन दीजिए।

उन्होंने भावपक्ष व कला पक्ष का सुन्दर संगम प्रस्तुत करके अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। उनकी दृष्टि रसवादी ही कही जायेगी।

सारांश यह कि भारतेन्दु हरिश्चन्द व ठाकुर जगमोहन सिंह की कविता हिन्दी साहित्य को अधिक समृद्ध किया है।

संदर्भ सूची

1. ठाकुर जगमोहन सिंह समग्र-सं. रमेश अनुपम, पृ०-7-13, संस्करण- 2014, राजकमल प्रकरण दिल्ली।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य राय चन्द्र शुक्ल पृ०-315, 38वाँ संस्करण सं. 2057 वि., नागरी प्र. सभा काशी, वाराणसी।
3. ठाकुर जगमोहन सिंह समग्र- पृ०- 193
4. वही, पृ०-199
5. हि.सा.का. इतिहास- पृ०-314-315

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का समीक्षात्मक दृष्टिकोण

डॉ० अरुण कुमार मिश्र
वरिष्ठ सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी
एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़
प्रो. राजेंद्र सिंह उर्फ़ रज्जू भय्या विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना

हिन्दी समीक्षा का कैनवास बड़ा ही अर्थगाम्भीय, अभिव्यंजनापूर्ण रहा है। जिसमें युग प्रवर्तक समीक्षा और विचारधारा के आग्रही समीक्षक भी रहे। कुछ ने स्वच्छंद रूप से अपनी लेखनी चलाई, परन्तु इन सबमें जब कोई कवि समीक्षा क्षेत्र में उतरता है, तो उसकी समीक्षा हृदयवर्धक, ज्ञानवर्धक एवं सम्प्रेषण से परिपूर्ण होती है। इस लेख में निराला की समीक्षा की दृष्टि क्या थी उसी अनुसंधान और विश्लेषण का प्रयास किया जायेगा।

सन्दर्भ : 9

हिन्दी आलोचना के विकास में शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग और प्रगतिवादी समीक्षा चलती है। इसी के समानान्तर स्वच्छंदतावादी समीक्षा और छायावादियों कवियों की आलोचना दृष्टि भी विकसित हुई। यूँ तो छायावादी कवि आलोचना पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखते। बावजूद इसके काव्य की भूमिका में पत्र–पत्रिकाओं में जो उनका दृष्टिकोण मिलता है। उसे ही उनका समीक्षात्मक दृष्टिकोण कहा जाता है। छायावाद के कवि समीक्षकों में निराला का विशिष्ट स्थान है। निराला ने विभिन्न लेखों, पत्र–पत्रिकाओं में समीक्षा लिखी, जिसे बाद में संकलित करके निराला के समीक्षात्मक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया गया। निराला की पुस्तक विशेष रूप से संबद्ध आलोचना के अन्तर्गत 'नारायण प्रसाद बेताब' की 'महाभारत' कृति की समीक्षा और स्वयं रचित तुलसी कृत 'रामायण' में 'अद्वैतमत' शीर्षक की गणना की जा सकती है। निराला ने अपनी समकालीन पत्रिकाओं– 'माधुरी', 'प्रभा', 'सरस्वती', 'शारदा' और कवीन्द्र में 'विविध विषय' शीर्षकों के अंतर्गत दी गई टिप्पणियों की भाषा में व्याकरणिक दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की है। निराला ने 'पन्त और पल्लव' तथा 'रवीन्द्र–कविता–कानन' दो समीक्षापरक पुस्तक की रचना की। 'पन्त और पल्लव' निराला की प्रसिद्ध समीक्षात्मक कृति है। इस समीक्षा में निराला ने

पंत जी द्वारा 'पल्लव' की भूमिका में प्रस्तुत किये गये विचारों की समीक्षा की है। उन्होंने 'पल्लव' से अनेक काव्य पंक्तियों को उद्धृत कर अपने मत की पुष्टि भी की है। वही दूसरी समीक्षापरक पुस्तक 'रवीन्द्र कविता कानन' जिसका प्रकाशन वर्ष 1923 ई० में हुआ था। इसमें निराला ने रवीन्द्रनाथ के साहित्य के विभिन्न पक्षों की समीक्षा की है। इसमें निराला ने बांग्ला के महान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्यात्मक व्यक्तित्व को बिहारी आदि से श्रेष्ठ बताया है। इसे निराला के बाल्यावस्था में बांग्ला का संस्कार भी कह सकते है।

गद्य की अन्यान्य विधाओं में निराला ने जीवनीपरक, संस्मरणपरक आदि पर भी समीक्षा प्रस्तुत की है। उनके जीवनी समीक्षा में कवीन्द्र रवीन्द्र, तुलसीदास, चण्डीदास आदि हैं। उन्होंने समीक्षा में अपना शत–प्रतिशत दिया है। निराला के समीक्षा साहित्य की भाषा क्लिष्ट और संस्कृतनिष्ठ है। इसमें पाठक को थोड़ी बहुत दुरूहता हो सकती है, पर निराला सर्वत्र क्लिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं करते, कहीं–कहीं सरल, सहज भाषा का भी प्रयोग करते है। निराला ने जिस प्रकार काव्य में नवीन उपकरणों का प्रयोग करके पद्य को एक नये आयाम तक पहुँचाया है, उसी प्रकार गद्य में भी अपनी आलंकारिता और व्याकरण के लिए प्रतिमान बनाया है। वैसे गद्य में उन्होंने रस का प्रयोग नहीं किया है, पर अलंकार और व्याकरण का खूब प्रयोग किया है। छायावादी कवियों द्वारा गद्य में अलंकारों का बहुत प्रयोग किया है, जबकि अलंकारों की योजना वाङ्मय के 'पद्य' रूप के लिए अधिक उपयुक्त रहती है। वस्तुतः छायावादी गद्य समग्र हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक अलंकृत रहा है। अतः निराला की गद्य–शैली के संदर्भ में अलंकार विधान पर पृथक ढंग से विचार करना अनिवार्य है। उपमानों का चयन निराला ने प्रकृति, विज्ञान, साहित्य, व्यावहारिक जीवन आदि से किया है। जहाँ निराला एक ओर रूढ़िवादी उपमानों की उनके साहित्य में स्थान देते है, वहीं दूसरी ओर नये उपमानों की संख्या भी कम नहीं करते है। कितने स्थानों पर तो उन्होंने पुराने उपमानों का ही नवीनीकरण कर दिया है। किन्तु यदि अलंकार की दृष्टि से देखा जाये तो उनका संपूर्ण गद्य साहित्य एक जैसा नहीं है। उनकी प्रारम्भिक कृतियों– अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरूपमा, लिली आदि में अलंकारों का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। लेकिन बाद में कृतियों में इस ओर उनकी प्रवृत्ति क्रमशः क्षीण होती गई। निराला ने अलंकारों का प्रयोग अधिकांशतः एक या दो छोटे वाक्यों में ही किया है। किन्तु कहीं–कहीं बड़े आलंकारिक स्थल है। जहाँ उनकी गद्य शैली में अलंकार घुल–मिल गए है, वे इस तरह से घुले है कि उनमें अभिव्यक्त भावों को समझने के लिए उपमानों से निर्मित बिम्ब को भी पहले समझना पड़ता है। उदाहरणार्थ– "नाटक समस्या निबन्ध के आरम्भ में संसार को ही ईश्वर का नाटक मानते हुए, जो रूपक प्रस्तुत किया गया है, उनमें अनेक बिम्बों का एक साथ चित्रण होने के कारण वह अत्यंत दुरूह हो गया है।"[1]

यो तो महाप्राण निराला के अलंकारों में कोमल कल्पना की प्रधानता रही है, परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ है। कहीं–कहीं रूपक लेखक के उद्देश्य की सफल अभिव्यंजना में सहायक भी हुए हैं।

उदाहरण स्वरूप– "भाषा की गति और हिन्दी की शैली में हिन्दी भाषा को बालिका रूप में मानवीकृत कर दोनों का विकास में जो समानताएँ ढूढ़ी गई है, उनमें भाव अधिक स्पष्ट हो गए है।"[2]

महाप्राण निराला का सम्पूर्ण साहित्य उपमाओं से भरा पड़ा है। छायावादी उपमाएँ भावों की सम्प्रेषणीयता में बाधित हुई है, जबकि कवित्व से बोझिल होने के कारण लालित्य और मधुरता को व्यंजित करने में स्फल रही है। उदाहरण– 'स्नेह की विद्युत लता काँप उठती। अपनी देह के वृत्त पर अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चन्द्रपुष्प की तरह, सौन्दर्योज्ज्वल पारिजात की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु से डोल उठती।' कुछ उपमाओं में तो निराला ने कल्पना का प्रयोग इस तरह से किया कि वे बिम्ब निर्माण में सहायक भी हुए है। नीचे उदाहरण में उनके तीन बिम्ब एक साथ चित्रित हुए है– 'जनता की क्षुब्ध तरंग शांत हो गई। सब लोगों के अंग रूप में तड़ित से प्रहत निश्चेष्ट रह गये। सबकी आँखों के संध्याकाश में जैसे इन्द्रधनुष अंकित हो गया।' इस उक्ति में समुद्र गर्जन का दृश्य, बिजली गिरने का दृश्य, और वर्षा से धवल आकाश में निकले इन्द्रधनुष का दृश्य साकार हुआ है। निराला ने नवीन उपमानों का भी चयन किया है। उनके गद्य साहित्य में भी ऐसे नवीन उपमान सन्निविष्ट रहे हैं–

क. "संध्या समय के प्रान्तर की तरह शून्य जन मौन बैठे रहे।"

ख. "आँखें बड़ी-बड़ी आम की फॉक जैसी पढ़ी लिखी जैसे सुबह कि किरण आसमान से उतरी हो।"

निराला ने दैनिक जीवन में होने वाली क्रियाओं से भी उपमान ग्रहण किये है जिसमें नवीनता के साथ-साथ रोचकता भी है।

ग. "भँवर में चक्कर खाकर एक तरफ को झुकी हुई अब डूबी तब डूबी नाव के, सवारों की तरह रामनाथ की दसा थी।"[3]

स्वाभाविक है कि दृश्य, श्रव्य और घ्राण बिम्ब विषयेतर नहीं है। इसी तरह निराला द्वारा प्रयुक्त कितने ही उपमान अत्यधिक सूक्ष्म है उनमें सौंदर्य तत्व, स्वप्न आदि तत्वों को उपमान रूप में कल्पित किया गया है– "कनक रात्रि के सौंदर्य की तरह इन सबकी आँखों में छिप गई।" इससे इस तरह से हम देख सकते है कि अलंकार योजना में निराला ने अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। उन्होंने हमेशा संदर्भ के अनुकूल ही उपमानों का चयन किया है। निराला ने पुराने उपमानों को नवीन रूप देकर उनका नवीनीकरण कर दिया है। इस प्रकार निराला ने आलंकारिता को गद्य का एक अनिवार्य रूप भी स्वीकार किया है और उसका स्थान महत्वपूर्ण बताते है। निराला के शब्द विधान को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– शब्द चयन एवं शब्द प्रयोग। निराला ने अपनी गद्य कृतियों में तत्सम्, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों में से किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। यह चयन शब्द के अन्तर्गत आयेगा और संज्ञा शब्दों, सर्वनाम शब्दों एवं क्रियापदों के प्रयोग में किसमें-किन

विशेषताओं का समावेश किया है, यह भी शब्द चयन के अन्तर्गत ही आता है। उपन्यासों के अन्तर्गत उन्होंने 'अप्सरा, 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरूपमा' इन चारों उपन्यासों में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुतायत में मिलता है। तत्सम शब्दों का पर्याप्त प्रयोग उनकी अधिकांश कहानियों में भी हुआ है। तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग भी निराला ने पर्याप्त मात्रा में किया है। तद्भव एवं देशज शब्दों की संख्या में तत्सम शब्दों से कहीं अधिक रही है। यह निराला के सहज व्यक्तित्व और जन सामान्य के सम्पर्क का परिणाम है, जो निराला के सम्पर्क में जैसे-जैसे आते गये, वैसे-वैसे उनकी रुचि लोकभाषा में प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने की ओर ढलती गयी। उपन्यासों में 'चमेली', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामें', 'इन्दुलेखा' कहानियों में 'देवी', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीबी', रेखाचित्रों में 'कुल्लीभाट', बिल्लेसुर बकरिहा' आदि में स्थानीय शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे- जेंगरे, भड़नी, मचिया, टिल्लाना, झापड़, कंडे, राबी, गोई, लग्गा, गोड़, देहरी, सगेरी आदि। इसके अतिरिक्त कतिपय शब्द तुकाश्रित है। ग्रामीण जनता की यह प्रवृत्ति है कि वे भाषा में प्रवाह-गुण के समावेश के लिए एक शब्द की तुक से मिलता-जुलता दूसरा शब्द उसके साथ जोड़ देते है। 'रहन-सहन', 'अदब-कायदा', 'जात-बिरादरी', 'भाई-बंद', 'खान-पान' आदि। संज्ञा शब्दों को भी निराला के गद्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। ग्रामीण और नगरों की सभ्यता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने संज्ञा शब्दों का चयन किया है। नगर अथवा शहर से संबंधित कथानक में पात्रों के नाम- 'आभा, नरेन्द्र, ललिता, शोभा, स्नेहशंकर, विजय, अजित' आदि तथा ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कथानक में पात्रों के नाम- 'सुधुआ, दयाराम, देवी दयाल, लखुआ, बुधुआ आदि। निराला ने अपने गद्य साहित्य में अनेक प्रकार की क्रियाओं का सफल प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि निराला ने प्रेमचंद और निर्मल वर्मा को फेटकर मिला दिया हो, कारण स्पष्ट है कि प्रेमचंद ग्राम्य जीवन के कथाकार है तो निर्मल वर्मा महानगरीय जीवन के कथाकार है। उनकी गद्य शैली में अकर्मक क्रिया, समर्कम क्रिया, संयुक्त क्रिया, सहायक क्रिया आदि क्रियाएँ यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाती है। निराला ने प्रमुख क्रिया के साथ प्राय: सहायक क्रिया का प्रयोग किया है। निम्न उदाहरण- क. वाजपेयी जी साहित्य को ही अपने जीवन का ध्येय बनाना चाहते है। ख. रोगशय्या पर पड़े हुए थे। इन उदाहरणों में दो-दो क्रियाओं का प्रयोग हुआ है- 'बनाना' तथा 'चाहते हैं', 'पड़ना' तथा 'थे'। बहुत से स्थानों पर अकर्मक क्रिया का प्रयोग हुआ है। बिल्लेसुर बकरिहा आदि। कहीं-कहीं निराला ने अनेक कर्मों के लिए एक क्रिया का प्रयोग किया है यथा- "पर वे भी पीसकर, चोका टहल कर कंडे पाथकर, ढोर छोड़कर, रोटी पकाकर, छोटे से बाग के आम महुए बीनकर, रोटी लड़कों को किसानी के काम में लगाकर ईश्वर के यहाँ चली गई।" क्रियापदों का प्रयोग भी निराला ने सर्वाधिक किया है।

विधानुसार वाक्य रचना का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। कथा साहित्य के वाक्य निबन्ध और आलोचना आदि के वाक्यों से भिन्न होते हैं। कथा साहित्य में वाक्य प्रयोग पात्रों तथा भावों पर

आश्रित होते है। निबन्ध तथा आलोचना में वाक्य परिवर्तन प्रायः नहीं होता। निराला ने स्पष्ट रूप से भावों के अनुरूप वाक्यों का परिवर्तन किया है। उन्होंने संवादों में छोटे-छोटे तथा प्रभावपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया है। निराला की सभी गद्य कृतियों में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। मुहावरें तो निराला की अभिव्यंजना शैली का एक अंग ही बन गये है। उदाहरणार्थ- क. आचरण का उन्हें भानमात्र है, पर ऐंठ नहीं छोड़ते। ख. आफत का पहाड़ हरि की इच्छा से मुझी पर आ टूटा। विराम-चिह्न में निराला ने अपने गद्य साहित्य में प्रायः सभी विराम-चिह्नों का प्रयोग किया है। उन्होंने यथास्थान- अर्द्ध विराम, पूर्ण विराम आदि का प्रयोग किया है। अपने मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वाक्य के मध्य में कोष्ठकों का प्रयोग किया है। जैसे- "एक हिन्दुस्तानी चीज को अंग्रेजी चीज (Cheese) बना डालते है।" अर्द्ध विराम का प्रयोग दो वस्तुओं में समानता दिखाने के लिए भी किया गया है। यथा "फूलों का मुख्य गुण है, उनकी सुगन्ध, कृति का मुख्य गुण है, उसकी रोचकता।"

स्पष्टतः निराला गद्य साहित्य में व्याकरण में विशेष ध्यान देते है। उन्होंने शब्दों को बहुत ही व्यवस्थित ढंग से प्रयोग किया है। निराला का व्याकरण पर एकाधिकार हैं। उनकी रचनाओं में इसका प्रमाण देखा जा सकता है। साहित्य के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में निश्चित धारणा बनाने के लिए उसके द्वारा लिखे गये पत्रों का अवलोकन भी आवश्यक है। निराला ने समय-समय पर अपने सम्बन्धियों एवं निकट मित्रों को कुछ पत्र लिखे थे। जिनका उल्लेख पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र हुआ है। पुत्र रामकृष्ण के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी के अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों को पत्र लिखे थे, जिनके नाम इस प्रकार है- महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामविलास शर्मा, जानकी बल्लभ शास्त्री, नवजादिक लाल, शिवपूजन सहाय, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि। ये पत्र साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मतवाला, त्रिपथगा, आज, देशदूत, नई धारा आदि पत्रिकाओं के अतिरिक्त महाकवि श्री निराला अभिनंदन ग्रंथ, फाइल और प्रोफाइल आदि पुस्तकों में भी प्रकाशित हुए थे। निराला एक ऐसे साहित्यकार है, जिनके विषय में बहुत अधिक भ्रांतिया फैली हुई है। उनके पत्रों के विश्लेषण द्वारा हम उनके व्यक्तित्व को समझने में कुछ हद तक सफलता प्राप्त कर सकते है। निराला के पत्रों में उनके जीवन और साहित्य सम्बन्धित विवरण भी व्यापक रूप में उपलब्ध है। जिसमें वे शिवदान सिंह चौहान, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि को पत्र लिखते है। इन पत्रों में उनकी भाषा और उनकी दृष्टि परिवेश और प्रसंग के अनुकूल मिलती है। ध्यातव्य है कि निराला की यथार्थवादी दृष्टि का विकास 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' जैसे उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसके पहले 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरूपमा' जैसे उपन्यासों में रोमाण्टिक कल्पना का ही प्रसार दिखाई देता है। 'चोटी की पकड़' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ था। इस उपन्यास का प्रकाशन चार भागों में होना था, लेकिन निराला की शारीरिक अस्वस्थता के कारण इसका प्रथम भाग ही प्रकाशित हो सका। निराला के अन्य उपन्यासों से यह उपन्यास भिन्न हैं। इसमें नायिका के सौंदर्य चित्रण की

प्रमुखता नहीं है, अपितु देश–काल के चित्रण पर अधिक बल रहा है। राजा राजेन्द्र प्रताप एक किशोर को अपने खर्चे से अच्छी शिक्षा दिलाकर उससे अपनी बेटी का विवाह कर देते है और अपने यहाँ ही रख लेते है। कुछ समय के बाद उसकी बुआ और मौसी भी वहाँ आकर रहने लगती है। बुआ के मुँह पर बने निशान के बारे में अपनी सेविका से जानकर रानी उन्हें अपने से नीचा आसन देती है। बुआ आसन स्वीकार न कर रानी को तीखा उत्तर देती हैं कि उनके दामाद का चेहरा भी तो उसी भाँति है, फिर वह चेहरा उन्हें कैसे पसंद आ गया। रानी लज्जित हो जाती है और इस अपमान का बदला लेने का कार्य मुन्ना बाँदी को सौंप देती है। उन दिनों बंगाल में स्वदेशी आंदोलन जोरो पर था। राजा राजेन्द्र प्रताप भी स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में थे। उन्होंने एक स्वदेश प्रचार प्रभाकर को अपने गढ़ में स्थान भी दिया था। उनके कोचमैन अली ने यह भेद अपने पुत्र युसूफ को बता दिया। यूसुफ ने राजा को फँसाना चाहा लेकिन एजाज की वजह से यूसुफ राजा का कुछ भी न बिगाड़ सका। मुन्ना बाँदी ने बुआ को तरह–तरह से झुकने के लिए विवश किया। बुआ का सतीत्व भी भंग करने की कोशिश की, मगर प्रभाकर के पहुँच जाने से वह बच गई। प्रभाकर ने रानी को राजा से समझौता कराने का वचन देकर उसे भी स्वदेशी आंदोलन के प्रचार के लिए तैयार कर लिया। उपन्यास के इस खण्ड की कथा यही पर समाप्त हो गई है।

प्रस्तुत उपन्यास में निराला ने विश्लेषणात्मक शैली में पात्रों का चरित्र–चित्रण किया है। उदाहरणतया मुन्ना के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है– "मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी बुआ की। उतनी ऊँची नहीं पर नाटी भी नहीं। चालाकी की पुतली। चपल शोख। श्याम रंग। बड़ी–बड़ी आँखें। बंगाल के लम्बे–लम्बे बाल, विधवा, बदचलन सहृदय। प्रायः हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका। भेद लेने में लासानी। कितने ही रहस्यों की जानकार। प्रधान अप्रधान नायिका, दूती सखी।" इस उपन्यास के पात्रों पर स्वच्छंदतावादी प्रभाव नहीं के बराबर है।

इस उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारणों की भी खोज की गई है। इस उपन्यास में बंगाल के वातावरण के चित्रण में सहजोभावन प्रत्यक्षतः मिलती है।

'चोटी की पकड़' में निराला ने प्रेम और सौंदर्य के चित्रण के प्रति आग्रह न रखकर स्वदेशी आंदोलन के चित्रण पर अधिक बल दिया है। इस उपन्यास की भाषा–शैली की उल्लेखनीय विशेषता उसकी व्यावहारिक शब्दावली और सरल वाक्य विन्यास में निहित है। उर्दू–फारसी के शब्दों का बहुल प्रयोग है। इस उपन्यास की वाक्य योजना भी अत्यंत सरल है। शैली की दृष्टि से इस उपन्यास में वर्णन विवरणात्मक शैली की प्रधानता लक्षित होती है। इसमें निराला अनेक स्थानों पर फूलों–फलों, पक्षियों आदि के नाम गिनाते जाते है।

निराला की उपन्यास कला के विकास की दृष्टि से 'चोटी की पकड़' का विशेष महत्व है। निराला के उपन्यासों में यह पहला उपन्यास है जिसमें कथानक और चरित्र-चित्रण की अपेक्षा वातावरण के चित्रण को प्रमुखता दी गयी है। यह उपन्यास पाठक के मन में सामाजिक रूढ़ियों, विकृतियों और व्यक्ति की स्वार्थी मनोवृत्ति के प्रति विक्षोभ और घृणा का भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया है। जो कि इस दिशा में निराला को पूर्णत: सफलता मिली है।

काले कारनामें

'काले कारनामें' निराला द्वारा प्रणीत अंतिम उपन्यास है। इसका प्रकाशन काल विजयदशमी संवत् 2007 वि० (20 अक्टूबर, 1950) है। निराला की अस्वस्थता के कारण यह पूर्ण नहीं हो सका और इसे अपूर्ण ही प्रकाशित कर दिया गया। नन्दकिशोर नवल इस बारे में लिखते है- "इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है- निराला जी की अस्वस्थता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कहीं निरालाजी की यह नवीन कृति अंधकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कार्य समझते है।"[4] निराला का यह उपन्यास वातावरण प्रधान हैं। इस उपन्यास का नायक मनोहर अपने गाँव राजपुर से सरायन गाँव में रोज रामसिंह के अखाड़े में कुश्ती के लिए जाता था। उसी गाँव के जमींदारों को मनोहर का वहाँ आना-जाना अच्छा नहीं लगता था। रामसिंह मनोहर को अपने से छोटा समझता था, यह बात रामराखन को भी अच्छी नहीं लगती थी। अत: रामराखन ने मनोहर को उसके पिता के पास बम्बई भेज दिया।

रामराखन ओर एक अन्य जमींदार यमुनाप्रसाद ने रामसिंह पर पं० माधव मिश्र के घर पर चोरी का आरोप लगाया। लेकिन थानेदार के सामने मिश्र जी द्वारा राम सिंह के पक्ष में बयान देने से राम सिंह टूट गया। अब थानेदार और दोनों जमींदार रामसिंह और मिश्र जी दोनों को फँसाने का ताना-बाना बुनने लगे। राम सिंह को उन्होंने विद्रोह के आरोप में गिर"तार कर लिया और दो सौ रूपये लेकर छोड़ दिया। वह सदा के लिये उनके अधीन हो गया। मिश्र जी को चोरी का झूठा रिपोर्ट लिखने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। मनोहर भी बम्बई न जाकर काशी चला गया। वहाँ पर वह शूद्र वर्ग के बीच में रहकर उन्हें पढ़ाने लगा तथा उनके साथ खान-पान करने लगा। मनोहर की अनुपस्थिति के कारण उसके माता-पिता बहुत दु:खी रहते थे। लेकिन सारे गाँव में मनोहर की प्रशंसा सुनकर उन्हें सान्त्वना मिलती थी।

'काले कारनामें' के अपूर्ण रहने के कारण उसका कथानक केवल इतना ही है। उपन्यास का आरम्भ वर्तमान और अंत मनोहर की कथा से हुआ है। उसमें नायकोचित वीरता, उदारता, लगन आदि गुण भी विद्यमान है।

इस उपन्यास की काफी आलोचना भी हुई जिसमें– नागार्जुन, सूर्यप्रसाद दीक्षित मुख्य हैं। रामविलास शर्मा इस उपन्यास की कमजोरियों, खास तौर से बहुत सारे प्रसंगों की अस्पष्टता को नजरअंदाज़ करते हुए इसके अंत पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहते है– "मनोहर लौटकर घर नहीं आया। गाँव की कोई समस्या हल नहीं हुई। उपन्यास अधूरा है। यही उसकी सफलता है। काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने के बदलते दुख और त्रास के वातावरण में आशा–किरण की झलक भर दिखाकर समाप्त हो जाता है।"[5]

यह उपन्यास पूर्णतया यथार्थवदी है। इसमें ग्रामीण निर्दोष, जनता पर जमींदारों के अत्याचार पुलिस वर्ग के पक्षपात पूर्ण व्यवहार आदि विविध घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि निराला का व्यवहार था। कुछ–कुछ मनोहर में भी वो लक्षण दिखते है। देश–काल प्रधान उपन्यास होने के कारण इसमें तत्कालीन ग्रामीण परिस्थितियों का विशद् वर्णन मिलता है। 'काले कारनामें' में निराला ने व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। इसमें संस्कृत शब्द नगण्य है। इसकी भाषा में प्रसाद और गुण की प्रधानता है।

शैली की दृष्टि से काले कारनामें में संवाद शैली प्राधान्य है। जिससे वस्तु निरूपण में अधिक सजीवता और स्वाभाविकता आ गई है।

इस कृति के सम्बंध में यही कहा जा सकता है कि इसमें निराला का छायावादी व्यक्तित्व पूर्णतया यथार्थ के धरातल पर उतर आया है। इस प्रकार ग्रामीण अंचल का यथार्थ वर्णन, व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करके निराला इस अधूरे उपन्यास में भी सजीवता ला देते हैं यही निराला का नवीन प्रयोग है।

यदि निराला 'चमेली' नामक अपना उपन्यास पूरा कर पाते, तो वह अवश्य 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी होता। पर अस्वस्थता के कारण निराला इस उपन्यास को पूर्ण नहीं कर सके। इसकी रचना उन्होंने फरवरी 1939 ई० में आरम्भ की थी। 'रूपाभ' पत्रिका में यद्यपि इसे कहानी स्तम्भ के अन्तर्गत रखा गया था किन्तु परिच्छेद के अन्त में नीचे दिए गए संकेत में इसका परिचय उपन्यास का एक अंश कहकर दिया गया है। अपूर्ण होने पर भी 'चमेली' उपन्यास का निराला–साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। "इसकी चित्रभूमि वहीं है जो 'बिल्लेसुर बकरिहा' का है किन्तु पात्र भिन्न है, वर्णन शैली भिन्न है। निराला हार, खलिहान का बड़ा अच्छा चित्रण करते है किन्तु किसी एक पात्र पर ध्यान केन्द्रित नहीं करते। किसान माड़ी हुई रास ओसा रहे है। चारपाई पर लट्‌ठ रखे जमींदार का सिपाही बैठा है। पुरवा की अदालत से लोग लौट आए है। आसमान पर ढोंरो की खुरी की धूल छाई हुई है। सिपाही बख्तावरसिंह बैल हाँकती चमेली के पास लाठी का गूला रास की बगल में वैसे ही दे मारता है जैसे 'छलाँग मारता हुआ'।"[6]

'चमेली' में निर्धन किसान दु:खी की रूपवती कन्या चमेली की कथा है। चमेली के सौंदर्य पर जमींदार बख्तावर सिंह आसक्त थे। एक दिन उन्होंने खेत में अकेली काम करती हुई चमेली को घेर कर उसके साथ बल प्रयोग का प्रयास करने लगे। चमेली की चिल्लाहट सुनकर पास के खेत में काम करते हुए महादेव उसकी सहायता के लिए आ पहुँचे। जमींदार ने एक नई चाल चली, उसने चमेली और महादेव के अनुचित सम्बन्ध की घोषणा आरम्भ कर दी। जमींदार के चापलूसों ने इसे सच मानकर महादेव को दोषी सिद्ध कर दिया। चमेली के पिता ने उसे डाँटा लेकिन चमेली की माँ ने उसे निर्दोष मान लिया। चमेली के पिता ने गाँव के पंडित शिवदत्तराम से इस कार्य में सहायता चाही और इन्हें भेटस्वरूप एक रूपया भी दिया। 'रूपाभ' में इस उपन्यास का इतना ही अंश प्रकाशित हुआ। सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि शूद्र ने ठाकुर को पीट दिया। दु:खी पर उल्टी रिपोर्ट लिखा दी गई। शिवदत्त राम त्रिपाठ को एक रूपया देकर दु:खी सहायता की प्रार्थना करता है। रामविलास शर्मा के शब्दों में– 'कुल्लीभाट' में निराला जैसे रामसहाय तिवारी की बातचीत अवधी से बदलकर खड़ी बोली में प्रस्तुत करते है, वैसे ही शिवदत्त राम की भैहू की बातचीत है– 'क्या है कि हफ्ते में एक रात, दो रात इस तरह दीदी अकेले बहिरे जाती है....... बहेतू कहीं की, सवेरे से जब देखो धोती उठाए बाहर भगी.... कहे देती हूँ तुमसे, यह अब रहेगी नहीं घर, खोदैया बिसाते से इसकी आसनाई है, सीधे तुम्हारे मुख में लगाऐंगी कालिख और होगी मुसलमानिन।"[7]

'चमेली' उपन्यास अधूरा होते हुए भी वातावरण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। गाँव का प्राकृतिक वातावरण सजीव हो उठा है। निराला गाँव की प्रकृति का बड़ा ही मनोरम ढंग से वर्णन करते हैं। 'चमेली' के अन्त में उन्होंने नोट लिखा "चमेली नामक अप्रकाशित उपन्यास से, जिसकी एक विशेषता ठेठ हिंदुस्तानी भाषा है।" जैसी भाषा को उस समय लोग हिन्दुस्तानी कहते थे, वैसी भाषा यह नहीं है। निराला कठिन तत्सम शब्दावली का प्रयोग छोड़ते हुए गद्य को बोलचाल की अवधी के नजदीक लाने का प्रयास करते है। "उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना सरसों और अरहर की राखें लगी हुई है। गाँव के लोग मँड़नी कर रहे है। कोई–कोई किसान, चमार, चमारिन की मदद से माड़ी हुई रास ओसा रहा है। धीमे–धीरे पछियाव चल रहा है। चमेली के इस गद्य पर अवधी की वैसी ही छाप है जैसे बिल्लेसुर बकरिहा पर।"[8]

इस उपन्यास में प्राय: संक्षिप्त वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जैसे– "लड़का लखनऊ में पढ़ता है। घर में तीन भाई है। ये सबसे बड़े रहे।" मुहावरों का भी इसमें स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष रूप में 'चमेली' उपन्यास अपूर्ण होने पर भी यथार्थवादी चित्रण और ग्रामीण भाषा के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

नन्दकिशोर नवल लिखते है– "चमेली और इन्दुलेखा' निराला के बिल्कुल अधूरे उपन्यास है। इनके जो अंश लिखे गये थे वे क्रमशः 'रूपाभ' और 'ज्योत्स्ना' में प्रकाशित हुए थे।"[9] निराला का यह भी उपन्यास अधूरा है। यह भी केवल एक परिच्छे में लिखा गया है। इसका प्रकाशन फरवरी 1967 की अपरा में पृ० 40–41 पर प्रकाशित हुआ था।

उपन्यास में समर नामक एक युवक अपनी सहपाठिनी इन्दु की ओर आकर्षित था। दोनों एक ही गाँव में रहते थे। इन्दु के धनवान पिता मधु पुत्री के विवाह के लिए वर ढूँढ़ रहे थे, लेकिन उन्हें कोई वर पसन्द ही नहीं आता था। इन्दु घर वालों से नजर बचाकर भाई के माध्यम से समर को कभी–कभी भोजन आदि भेजती रहती थी। समर ट्यूशन कराके पढ़ता था, फिर भी वह कक्षा में प्रथम आया, इन्दु द्वितीय रही। दोनों को 30–30 रूपये छात्रवृत्ति मिली। इन्दु के पिता उसके प्रति विशेष चिन्तित रहते थे, अतः समर प्रत्यक्ष रूप से इन्दु से बचकर रहता था। उपन्यास का जितना अंक प्रकाशित हुआ था, उसमें केवल इतनी ही थी। इन्दु और समर की कथा आधिकारिक प्रतीत होती है। क्योंकि इस परिच्छेद का अंत और आरम्भ उन्हीं से सम्बद्ध रहा।

महत्त्व

निराला के पूर्व के उपन्यासों में काल्पनिकता, आदर्शवादिता, रोमाण्टिकता का विशद् वर्णन मिलता है परन्तु जितने अप्रकाशित उपन्यास है सब अधिकतर यथार्थवादी उपन्यास की श्रेणी में है। इस प्रकार निराला इन उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन समाज की अनेक समस्याओं को सशक्त रूप चित्रित कर उनका समुचित समाधान भी प्रस्तुत किया है। जमींदारों के अन्याय, किसानों के शोषण, जाति प्रथा का विरोध आदि का यथार्थपरक अंकन किया है। इसके उपन्यासों की भाषा अत्यन्त यथार्थपरक व पात्रानुकूल है। भाषा के समान ही, उपन्यासों की शैली भी पात्रों व भावों के अनुसार परिवर्तित होती गयी, इसलिए विविध शैलियों के दर्शन होते है।

संदर्भ सूची

1. प्रबंध प्रतिमा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० 43
2. चयन, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० 17
3. अप्सरा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० 11
4. निराला रचनावली, भाग–4, सम्पा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 12
5. निराला की साहित्य साधना, भाग–2, डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 467
6. नये पत्ते, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पृ० 92

7. निराला की साहित्य साधना, भाग-2, डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 486

8. वही, पृ० 502

9. निराला रचनावली, भाग-4, सम्पा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 12

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

जैव विविधता-भारत में जीव विविधता का एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० राजीव कुमार
एसो० प्रोफेसर, भूगोल विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़।

सारांश

जीवमण्डल में पाये जाने वाले जीव जन्तु एवं सूक्ष्म जीवों के अतिरिक्त पादप विविधता के मध्य सम्बन्ध को जैव विविधता कहते ही भारत में यह विविधता उसकी विशालता एवं जलवायु के कारण में दिखायी देती है। बढ़ती जनसंख्या के कारण में मानव की गतिविधियों के बढ़ने से पादपों के साथ-साथ जीवों के विलुप्त होने का खतरा भी दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इस प्रपत्र के माध्यम से भारत में जीव विविधता के क्षेत्रों पर प्रकाश डालते हुए जीवों के अस्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव का आंकलन करने का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में भारत सरकार द्वारा तथा ऐजेन्सियों द्वारा जीव संरक्षण के किये गये प्रयासों पर भी प्रकाश डाला गया है ताकि भविष्य में उनके अस्तित्व के संकट को रोका जा सके तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। जिससे पृथ्वी पर पर्यावरण सन्तुलन बना रहे।

जीवमण्डल में पाये जाने वाले जीव जन्तु, पादप एवं सूक्ष्म जीवों के मध्य आनुवांशिक, जातिगत और पारिस्थितिक स्तर पर पायी जाने वाली विविधता जैव विविधता कहलाती है। सामान्य अर्थों में जैव विविधता से तात्पर्य वनस्पति एवं प्राणी में पाये जाने वाले जातीय भेद से है। किसी क्षेत्र में पाये जाने वाले पादप एवं प्राणियों की जातियों की संख्या उस क्षेत्र की जैव विविधता को दर्शाती है। जैव विविधता शब्द का प्रयोग 1986 में अमेरिकी कीट वैज्ञानिक ई०ओ० विल्सन द्वारा किया गया। 1992 में रिओ शिखर सम्मेलन के बाद यह अधिक प्रचलित हुआ। पृथ्वी पर आकारिकी कार्यिकी तथा आनुवांशिक आधार पर विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते हैं। जैव विविधता का विस्तार मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं से लेकर विशालकाय प्राणी हाथी, सूक्ष्म लाइकेन से विशालकाय रेड वुड वृक्षों तथा अति सूक्ष्म प्लैंकटन से स्थूलकाय व्हेल मछली तक पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1987 में जैव विविधता को परिभाषित करते हुए कहा है "जैव विविधता

का तात्पर्य जीव जन्तुओं में पायी जाने वाली विभिन्नता, विषमता और पारिस्थितिकी जटिलता से है।" पर्यावरणीय ह्रास के कारण जैव विविधता का क्षय हुआ है है। जीवों की अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो गयी है अथवा संकटग्रस्त हो गयी है, जिसके कारण संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है।

जैव विविधता के प्रकार (Types of Biodiversity)

जैव विविधता को सामान्यतया तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है –

1. **आनुवांशिक विविधता (Genetic Diversity)** – इसका सम्बन्ध किसी प्रजाति विशेष में पाये जाने वाले जीवों की विविधता से है यह विविधता किसी एक स्थान पर एक ही जाति की जनसंख्या के जीवों में वितरित हो सकती है। यह विभिन्नता व्यक्तिगत जीन्स के कारण होती है।
2. **जातिगत विविधता (Species Diversity)** – पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी प्रकार के जीवों (पादप व प्राणी) की जातियों की विविधता जातिगत विविधता कहलाती है। इसमें सूक्ष्म जीव से लेकर–विषाणु, वैक्टीरिया तथा प्रोटिस्ट, पादप प्राणियों कवक के बहुकोशीय जगत तक शामिल है।
3. **पारिस्थितिक विविधता (Ecosystem Diversity)** – पृथ्वी पर अनेक पारिस्थितिक तत्र में पाये जाने से जैविक समुदायों में मिलने वाली विविधता को पारिस्थितिक विविधता कहते हैं। इसके अन्तर्गत स्थल पोषण स्तर, ऊर्जा प्रवाह आदि विविधताओं का समावेश रहता है। जैविक समुदाय में विभिन्न समुदायों द्वारा विशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्र को भी विकसित कर लेते हैं, साथ ही एक दूसरे से अन्योन्य क्रिया भी करते हैं।

विश्वव्यापी जैव विविधता वितरण (Distribution of World Wide Biodiversity)

विश्व में कुल वनस्पति एवं जीव जन्तुओं की 14,10,800 प्रजातियां निर्धारित हैं, जिसको निम्नसारिणी में दर्शाया गया है।

सारिणी – विश्व में जैव विविधता का वितरण

प्रजातियाँ	संख्या	प्रतिशत
कीट	7,51,000	53.23
पादप	2,48,000	17.57
वन्य प्राणी	2,81,000	19.92
कवक	69,000	4.89
प्रोटिस्ट	30,000	2.13
शैवाल	26,000	1.84
जीवाणु	4,800	0.34

विषाणु	1,000	0.07
योग	**14,10,800**	**100**

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि विश्व में सर्वाधिक जीव विविधता कीटों की अर्थात कीटों की अर्थात् 53.23 प्रतिशत है। विश्व में जीव प्राणी विविधता द्वितीय स्थान अर्थात् 19.92 प्रतिशत है जबकि पादप विविधता 17.57 प्रतिशत, कवक 4.89 प्रतिशत प्रोटिस्ट 2.13 प्रतिशत, शैवाल विविधता 1.84 प्रतिशत तथा जीवाणु व विषाणु विविधता 0.41 प्रतिशत मिलती है।

भारत में जैव विविधता के क्षेत्र

भारत जैव विविधता के सम्बन्ध में एक समृद्ध देश है। भारत की कृषि, पशुपालन, मत्स्यन, वानिकी एवं औषधीय उद्योग विशेष रूप से संतुलित हैं। भारत में लगभग 80,000 जातियाँ पायी जाती हैं। जिसमें 67000 कीट, 1000 मोलस्क, 6500 अवशेष, 140 एम्फिवियन, 420 रेप्टाइल्स, 1200 पक्षी तथा 340 स्तनधारी जीव प्रजातियां मिलती है। भारतीय जीव विविधता की समृद्धता व विविधता के क्षेत्र निम्न प्रकार से मिलते हैं –

(I) हिमालय पर्वत तन्त्र (Himalayan Mountain System)

1. **हिमालय गिरीपाद (Himalaya Foothills) :** इनमें विशेष भावर (**Bhabar**) और तराई (Tarai) निर्माण के गुण हैं और उत्तर में शिवालिक श्रेणी है। यहाँ बड़े स्तनधारी जैसे हाथी, सांभर, अनूप हिरण, चीतल, हॉग डियर, बार्किंग डियर, वाइल्ड बोर टाइगर, चीता, जंगली कुत्ते, लकड़बग्धा, काला भालू, रीछ, से ही विशाल भारतीय एकश्रृंगीय राइनोसिरस, भैंस, गंग घड़ियाल, लंगूर यदि जीव मिलते हैं।

2. **पश्चिमी हिमालय (उच्च तुंग प्रदेश) (Western Himalayas : High Altitude Region) :** जंगली खच्चर, जंगली बकरियाँ, थार, मारखोर, आईबेक्स और भैड़ नयन, मार्कोपोलो की भेड़, भारल या नीली भेड़, ऐन्टीलोप, हिरण (हैन्गुल, या कश्मीर महामृग और शोऊ सिक्किम महामृग, कस्तूरी मृग, छोटे स्तनधारी मारमॉट और पाइका मूषक, शशक, ईगल, हिम मुर्गे, तीतर, हिम चीता, भेड़िया, लोमड़ी, बिल्लियाँ काले और भूरे भालू, पक्षियाँ, मोनल फीजेंट, पश्चिमी ट्रोगोपेन, कोकलास, ग्रिफ्फोन गिद्ध, रैवेन आदि जीव मिलते हैं।)

3. **पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayala) :** एक क्षेत्र के अन्तर्गत लाल पंडा, भालू सुअर, फेरेट सुअर, सेही, बकरी एन्टीलोप, सीरो, गोरल, टाकिन्स मिलते हैं।

(II) प्रायद्वीपीय भारतीय उप-प्रदेश (Penimsular Indian Sub Region)

प्रायद्वीपीय भारतीय उपप्रदेश के दो जोन हैं, (i) प्रायद्वीपीय भारत (Peninsular India) और (ii) भारतीय मरुस्थल प्रदेश-थार मरुस्थल प्रदेश।

(I) प्रायद्वीप भारत (Peninsular India) : यहाँ प्राणिजीव के अन्तर्गत हाथी, जंगली सुअर, मृग, चीतल, सूकर मृग, अनूप मृग या बारहसींगा, सांबर, मुन्टजेक, वार्किंग डियर, एन्टीलोप, नीलगाव, ब्लैकबक, चिंकारा गजेल, जंगली कुत्ता, बाघ, तेंदुआ, चीता, शेर, जंगली सुअर, बंदर, लकड़बग्घा, गीदड़, गौर, साँड मिलते हैं।

(II) भारतीय मरुस्थल (Indian Desert) : प्राणिजात जीव के अन्तर्गत मुख्यतया बिलकारी है। स्तनधारियों में रोडेंट, जंगली गधा, ब्लैकबक, मरूथल बिल्ली, केराकल, लाल लोमड़ी, रेप्टाइल, सांप, छिपकली और कछुवा मुख्य है। पक्षियों में अत्यधिक प्रचलित ग्रेट इन्डियन बस्टार्ड हैं।

(III) उष्णकटिबंधीय वर्षावन प्रदेश (Tropical Rain Forest Region) :

यहाँ सभी प्रकार के प्राणियों की प्रचुरता है। इसमें जंगली हाथी, गोर है। सबसे विशिष्ट हुलुक गिबन, स्वर्णिम लंगूर, कैप्ड लंगूर, असम मैकाक, पिग टेल्ड मैकाक, लायन टेल्ड मैकाक, नीलगिरि लंगूर कृश लोरिस, विशाल गिलहरी, सिवेट, उड्डयन गिलहरी, नीलगिरि नेवला, शूली मूषक है।

(IV) अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह (Andaman and Nicobar Islands)

प्राणिजात जीव के अन्तर्गत स्तनधारियों की गई जातियों, असंख्य रेप्टाइल और समुद्री प्राणी है। स्तनधारियों में चमगादड़ और मूषक प्रमुख हैं। अंडमान सुअर, केंकड़े खाने वाला मैकाक, ताड सिवेट, मृग, चीतल, शूकर मृग, सांबर। समुद्र प्राणियों में हैं डयूगोंग, फल्स किलर ह्वेल, डालफिन पक्षियों दुर्लभ नारकोन्डम धनेश, निकोबार कबूतर और मेगापोड तथा अन्य पक्षी ह्वाइट बेलीड सी इगल, ह्वाइट ब्रेस्टेड स्वीफ्टलेट, कई फल कबूतर है। यहाँ लवणजलीय मगर कई समुद्री कर्म, नारियल कर्कट, छिपकली सबसे बड़ी जल मॉनिटर के अन्तर्गत सांपों की 40 जातियाँ नाग, पृदाकु, बोरल, समुद्री सर्प पाइथन प्रमुख है।

(V) सुन्दरवन के मैंग्रोव अनूप (Mangrove Swamps of Sundervans)

सुन्दरवन गंगा का डेल्टा (Delta) है जहाँ दोनों ब्रह्मपुत्र और गंगा मिलती है और बंगाल की खाड़ी में गिरती है। यहाँ प्राणिजाति जीव के अन्तर्गत मत्स्य पंकलंघी एवं अर्धस्थली गोवी छोटे-छोटे

कर्कट, स्थलीय कर्कट, फिलडर कर्कट और डोरीपि आदि है। अन्य प्राणी जीव वायक चींटी, मैग्रोन के ऊँचे प्रदेशों में चीता, सूअर, मॉनिटर, छिपकली, बंदर इत्यादि पाये जाते हैं।

भारतीय संकटापन्न प्राणिजात (Indian Endangered Faima)

इन्टरनेट के माध्यम से प्राणिजात जीव जन्तुओं की संकटापन्न जातियों के रूप में पहचान हुई है। जिनका विवरण निम्नवत् है –

स्तनधारी (Mammals)

प्राइमेट (Primates) : 19 प्रजातियों में से 12 जातियाँ संकटापन्न हैं। मुख्य जातियाँ हैं– होलॉक गिबन भारत का एक मात्र कपि, सिंह पुच्छी मैकाका, ठुँठ पुच्छी मैकाका, सुअर पुच्छी मैकाक, निलगिरि लंगूर, स्वर्णिम और फेयर्स लीफ बन्दर।

फोलिडोटा (Pholidota) : चिनी पेंगोलिन और भारतीय पेंगोलिन।

कार्निवोरा (Carnivora) : 36 प्रजातियों में से 28 जातियाँ संकटापन्न हैं। इसके अंतर्गत मुख्यतः भारतीय भेड़िया, गीदड़, लाल लोमड़ी, भारतीय लोमड़ी, जंगली कुत्ता, हिमालय भूरा भालू, रीछ, लाल पान्डा, रेटल, मालाबार, सिवेट, बाघ सिवेट, रेखित लकड़बग्घा, बाघ, भारतीय शेर, चीता, मरु बिल्ली, जंगली बिल्ली, चीता बिल्ली, पल्ला बिल्ली, अश्म बिल्ली और अन्य बिल्लियाँ ड्यूगाँग हैं।

आर्टिओडैक्टाइला (Artidactyla) : अन्डमान जंगली सुअर, कश्मीर महामृग या हैंगूल, अनूप मृग या बारहसींगा, ब्रो एन्टलर्ड मृग, अल्पाइन कस्तूरी मृर्ग, वन्य कस्तूरी मृग, मूषक मृग, ब्लैक बक या भारतीय एन्टीलोप, चिंकारा, चिरू या तिब्बती एन्टीलोप, चार-सींग एन्टीलोप या चौसींगा, गाऊर या भारतीय बाइसन, जंगली याक, जंगली भैंस आदि हैं।

लेगोमोर्फा (Lagomorpha) : असम खरगोश।

रोडेन्शिया (Rodentia) : उड्डयन गिलहरी और मारमॉट जातियाँ।

सीटेसिया (Cetacea) : गंग-डॉलफिन, ह्वेल और अन्य ह्वेल तथा समुद्री डॉलफिन।

पक्षियाँ (Birds) : इसके अन्तर्गत आते हैं गीस, हंस पिनखूड बत्तख, सफेद पंखी वुड बत्तख, ग्रेटेल हूपर स्वान, हंस, इंडियन ब्लैक क्रेस्टेड बाज, ब्लीथस बाज, काली महाश्येन, बाज ईगल और बाज, आखेट पक्षी, बाँस तीतर, काला स्पूरिआल, पेन्टेड स्पूरिआल, पर्वत बटेर, ब्लड फ़ीजेंट, फ़ीजेंट,

मयूर फ्रीजेंट, भारतीय मयूर, असंख्य सारस जैसे पूर्वी सामान्य सारस, सारस, सारस, महान सफेद सारस, मार्वड फिनफूट, कई सारंग और बाज, जैसे छोटा सारंग, होउब्रा सारंग, ग्रेट-इंडियन बुस्टार्ड, बंगाल बाज, भारतीय स्कीमर, निकोबार कबूतर, फ्रॉगमाथस, मुख्यतः होडगसन्स फ्रॉगमाउथ, हॉर्न बिल्स, जैसे ह्वाइट थ्रोटेड ब्राउन होर्न बिल्स, रिफ्यूज नेक्ड होर्न बिल्स, रोर्थ्ड हार्नबिल्स, ग्रेट पाइड हार्नबिल, भारतीय पाइड होर्नबिल और मालाबार फाइड हार्नबिल।

रेप्टाइल (Reptiles) : कूर्म, कछुआ, छीरापिन जैसे कूर्म, हरा समुद्री कूर्म, लौगर हेड और हॉकबिल या कछुआ कवच कूर्म, ज्वारनदमुखी मगर, कच्छ मगर और घड़ियाल, मॉनिटर छिपकली, भारतीय अंडा खाने वाला सांप।

ऐम्फिबिया (Amphibia) : जरायुज टोड, भारतीय सेलामेन्डर।

अकशेरुकी (Invertebrates)

क्रस्टेशिया (Crustacea) : नारियल बड़ा यति कर्कट।

इन्सेक्टर (Insecta) : कुछ ड्रेगनफ्लाई, तितलियाँ और मॉथ और भृंग, अत्यधिक संकटापन्न टिलयार्ड ड्रेगनफ्लाई, मॉथ और तितलियों की 55 प्रकार हैं, भारत में, जिनमें से 14 दुर्लभ हैं।

जैव विविधता में जीव ह्मस एवं विलोपन के कारण

21वीं शताब्दी के विकास जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हुआ है। प्रारम्भ में जैव विविधता को महत्व को नीतिकारों ने गम्भीरता से नहीं लिया था किन्तु बाद में इसके महत्व को स्वीकारा। पर्यावरण विद्वान अनिल अग्रवाल मानते थे कि सकल प्रकृति उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद से अधिक महत्वपूर्ण होता है। वास्तव में किसी भी राष्ट्र की जैव विविधता जितनी अधिक समृद्ध होगी उतना ही उसका सामान्य विकास व भविष्य भी समृद्ध होगा। जैव विविधता जीव ह्मस एवं विलोपन का कारण भूमण्डलीय ह्मस एवं विलोपन का कारण भूमण्डलीय ऊष्मता का बढ़ना। अनुवांशिक ट्रान्सजीव का प्रभाव, गहन वर्ण संकट, समुद्री जीवों को अत्यधिक व्यापारिक स्तर हेतु पकड़कर उन्हें समाप्त करना आदि कारणों से जीवों का ह्मस एवं विलोपन को बढ़ावा मिला है। इसीलिए जीव जन्तु के संरक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी।

भारत में जैव विविधता संरक्षण उपाय (Bio Diversity Conservation in India)

देश में संकटापन्न जीवों की बढ़ती संख्या को देखते हुए उनके संरक्षण तथा प्रबन्धक के उपाय किये गये हैं। देश में गैर सरकारी स्वैच्छिक संगठन (NGO) तथा सरकारी संगठन राज्य और केन्द्र स्तर पर बनाये गये हैं। सरकारी क्षेत्र में यह कार्य पर्यावरण वन मंत्रालय द्वारा किया जा रहा है। जिसका उद्देश्य निम्नवत् है –

(i) प्रजातियों को नियंत्रित एवं सीमित दोहन द्वारा उनके प्राकृतिक आवासों की रक्षा करना।

(ii) संरक्षित क्षेत्रों (अभ्यास, जैव आरक्षित क्षेत्र राष्ट्रीय अध्ययन आदि में) में प्रजातियों का परिरक्षण करना।

(iii) जीव एव ंपादप प्रजातियों के लिए जैव आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना करना।

(iv) उपरोक्त कार्यों हेतु कानून बनाना।

भारत में जैव विविधता संरक्षण हेतु गैर सरकारी संगठन –

भारत के गैर सरकारी तथा स्वैच्छिक संगठन वन्य जीव के संरक्षण हेतु संगठनों द्वारा किये गये निम्नवत् हैं –

(i) **मुम्बई प्राकृतिक इतिहास सोसाइटी** – इनकी स्थापना 1883 में की गयी है। जिसमें वन्य जीवों की सूचनाएं एकत्रित की जाती है।

(ii) **मुम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी** – इसकी स्थापना 1958 में वन्य जीवन प्रबन्ध के उद्देश्य के देहरादून में की गयी।

(iii) **वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड फॉर नेचर, इंडिया**– इस संस्था की स्थापना 1969 में दिल्ली में आयोजि IUCN की महासभा के अधिवेशन के आधार पर स्वीट जरलैण्ड की सभी तथा भारत का केन्द्र मुम्बई में प्रोजेस्ट टाइगर के रूप में स्थापित की गयी।

वन्य जीव संरक्षण हेतु 1952 में सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत सेन्ट्रल बोर्ड आर्फ वाइल्ड लाइफ की स्थापना की गयी, जिनका बाद में नाम परिवर्तित कर दिया गया –

इंडियन बोर्ड आर्फ वाइल्ड लाइफ– यह 1952 में स्थापित वन्य जीव संरक्षण है जिसका 1991 में नाम बदलकर दिया गया, जिसके अन्तर्गत वन्य जीव संरक्षण हेतु निम्न कार्यों को शामिल किया गया –

(i) वन्य जीव संरक्षण को प्रोन्नत करने तथा अवैध शिकारपुर नियंत्रण हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों को सलाह।

(ii) राष्ट्रीय, अभ्यरणो, चिड़ियाघर की तथा राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना हेतु सलाह देना।

(iii) जीवित प्राणियों, खालों, पंखों, समूर तथा अन्य वन्य जीव पदार्थ के निर्मात सम्बन्धी नीति पर सरकार को सलाह देना।

(iv) देश में वन्य जीव संरक्षण की दिशा में प्रगति का आंकलन करना व सुधार हेतु सुझाव देना।

(v) वन्य जीवों के प्रति मानवीय रूचि तथा मानव जाति को पर्यावरण संरक्षण हेतु जाग्रत करना।

उपरोक्त कार्य हेतु केन्द्र सरकार ने अनेक कानून बनाये –

1. मद्रास वाइल्ड एलीफेन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1873
2. ऑल इण्डिया एलीफेन्ट प्रिजर्वेशन एक्ट, 1879
3. वाइल्ड वर्डस एण्ड एनीमल प्रोटेक्शन एक्ट, 1912
4. बंगाल राखोसेरस प्रिजर्वेशन एक्ट, 1932
5. असम राइनोसेरस दि प्रिजर्वेशन एक्ट, 1954
6. इण्डियन बोर्ड फॉर लाइफ साइंस, 1952
7. वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1972
8. इण्डियन नेशनल मैन एण्ड वायोस्फीयर कमैटी एक्ट, 1972
9. नेशनल वाइल्ड लाइफ एक्शन प्लान एक्ट, 1982
10. वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन अमेन्डमेन्ट एक्ट, 1991

जिनका उद्देश्य वन्य जीवों को संरक्षण कानून द्वारा किया जा सके। संकटापन्न जीव प्रजातियों के संरक्षण हेतु भारत में अनेक परियोजनाऐं भी लागू की गयी है, जिनका विवरण निम्नवत् हैं –

भारत में संकटापन्न जीवों को बचाने हेतु शुरू की गई परियोजनायें

1. **बाघ परियोजना** – भारत में यह परियोजना 1973 में लागू की गयी, जिसका कारण 1920 में देश में बाघों की संख्या 40000 थी। जो 1973 में मात्र 2000 रह गयी। 1940, 1970 में कैस्पियन टाइगर

विश्व में लुप्त हो गया, जिसके कारण संरक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी। भारत 1973 में वाघ को राष्ट्रीय पशु घोषित किया गया। वर्तमान समय में 18 राज्यों में 54 वाघ रिजर्व स्थापित है और वाघों की संख्या बढ़कर 4000 हो गयी है। देश में कर्नाटक, उ०प्र० एवं महाराष्ट्र राज्यों में सर्वाधिक वाघ रिजर्व स्थत है।

2. **गिरसिंह परियोजना** – गुजरात के सौराष्ट्र प्रायद्वीप में विस्तृत गिरवन एशियाई सिंहों का एक मात्र आवास स्थल है। कृषि कार्य हेतु वनों को साफ करना, अति पशुचारण तथा बढ़ते रिहायशी क्षेत्रों के कारण ये सिंहों की संख्या में भी निरंतर कमी आ रही है। 1972 में गुजरात सरकार द्वारा यह परियोजना बनाई गयी है। प्रारम्भ में यह गिरसिंह परियोजना थी, जिसे बाद में राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया।

3. **घड़ियाल/मरगमच्छ प्रजनन परियोजना** – घड़ियालों के संरक्षण हेतु 1975 में यह परियोजना उड़ीसा में लागू की गयी। भारत में घड़ियालों की तीन प्रजातियां मिलती हैं – (1) ज्वारनदमुखी घड़ियाल (2) स्वच्छ जलीय या दलदली मगर (3) घड़ियाल। देश में 16 घडियाल पालक केन्द्र है। इनकी पूर्व संख्या 250 से बढ़कर वर्तमान में 10000 हो गयी है।

4. **गैंडा संरक्षरण परियोजना** – देश में घटते गैंडा के कारण असम में गैंडा संरक्षण परियोजना 1981 में आरम्भ की गयी। वर्तमान समय में गैण्डों की संख्या 2500 है। प्राकृतिक आवासों के कष्ट होने तथा शिकार के कारण भारत में गैण्डों की संख्या में कमी आई है।

5. **हिम तेन्दुआ परियोजना** – इस परियोजना के अन्तर्गत हिमालय क्षेत्र में 12 संरक्षण केन्द्र 2009 में उत्तराखण्ड के अन्तर्गत केदारनाथ क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं। उत्तराखण्ड में गंगोत्री नेशनल पार्क, नंदा देवी वायोस्फीयर तथा वाघेश्वर वन क्षेत्र में प्रयासों से हिम तेंदुओं की संख्या बढ़कर 750 हो गयी है।

6. **हाथी परियोजना** – पर्यावरण संकट के दृष्टिकोण से हाथियों के संरक्षण हेतु 1992 में हाथी परियोजना बनाई गयी है। हाथियों के अस्तित्व की रक्षा हेतु 1972 में वन्य जीव संरक्षण कानून में संशोधन किया गया, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर हाथी दांत के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। वर्तमान में देश मे 32 एलीफेन्ट रिजर्व है, इन रिजर्वो के स्थापित होने हैं 2005 में हाथियों की संख्या 21890 से 2017 में बढ़कर 27312 हो गयी।

जैव जीव संरक्षण द्वारा पर्यावरण के संकट के बचाने का एक महत्वपूर्ण कार्य है यद्यपि भारत में जीव संरक्षण हेतु विभिन्न परियोजनाऐं वाघ परियोजना, गिरराजसिंह परियोजना, घडियाल/मगरमच्छ प्रजनन परियोजना, गैंडा संरक्षण परियोजना, हिम तेन्दुआ परियोजना तथा हाथी संरक्षण परियोजनाओं को लागू किये जाने से जैव संरक्षण को बढ़ावा मिला है। इसके बावजूद गिद्ध जिसे पर्यावरण सफाईकर्मी माना

जाता है, के अस्तित्व पर संकट है। इसके अतिरिक्त शुतुरमुर्ग तथा तितलियों पर भी अस्तित्व के लिए खतरा बढ़ गया है। आवश्यकता इस बात की है, गिद्ध परियोजना शुतुरमुर्ग परियोजना तथा तितलियों हेतु भी जरूरी कदम उठाये जाये। वर्तमान समय में तीव्र गति से जैव प्रौद्योगिकी का विकास किया जा रहा है, जिसके कारण जैव विविधता को भयानक खतरे का सामना करना पड़ेगा। इसीलिए जैव विविधता संरक्षण के लिए पर्यावरणीय अध्ययन बहुत आवश्यक है। भारत में 1971 से यूनेस्को के सहयोग से जैव विविधता के संरक्षण हेतु जीव मण्डल रिजर्व कार्यक्रम लागू किये गये हैं। जिसके सहयोग से ही भारत में विभिन्न जीव जन्तुओं के संरक्षण से परियोजनाओं को लागू किया गया। संरक्षण योजना को लागू करने के लिए भारत में 18 जीवमण्डल कोष स्थापित किए गये हैं। भविष्य में विभिन्न योजनाओं का प्रसार होने से जैव विविधता के मूल्यांकन एवं प्रबन्धक व संरक्षण से जीव जैव विविधता बनायी रखी जा सकेगी, जिससे पर्यावरण क्षरण एवं जैव विविधता के क्षरण को रोका जा सकेगा, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण आपदा प्रबन्धन से पर्यावरण में सन्तुलन बनाने में एक सहायक प्रयास सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची

1. प्रदीप कुमार : पर्यावरण भूगोल : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2007
2. अमित कुमार सिंह, भूमण्डलीकरण एवं भारत परिदृश्य और विकल्प, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
3. सविद्र सिंह, पर्यावरण भूगोल प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद, 1991
4. वी०पी० राव : पर्यावरण अध्ययन के आधार: वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 2005
5. डी०आर० खुल्लर: भूगोल, टाटा मैग्रोहिल एजूकेशन प्रा०लि०, चेन्नई।
6. राम आसरे चौरसिया: पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबन्ध, वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, इलाहाबाद।

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

भारत विभाजन की त्रासदी और अज्ञेय के 'शरणार्थी'

डॉ० प्रियदर्शिनी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, ई.एफ.एल. यूनिवर्सिटी

समय के साथ हर युग में परिवर्तन होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कभी यह परिवर्तन धीरे-धीरे समय के साथ होता है तो कभी कुछ क्रांतियाँ और आंदोलन इस परिवर्तन को लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। ऐसे ही साहित्यिक आंदोलनों में 'नयी कविता' आंदोलन एक ऐतिहासिक घटना के रूप में उभरा। नयी कविता ने कविता की पूर्व प्रचलित समस्त मान्यताओं और अवधारणाओं को परिवर्तित कर दिया। "नयी कविता ने कविता की समस्त अवधारणाओं को युग जीवन की आवश्यकता के अनुरूप ढालकर नयी अर्थवत्ता देते हुए अपना स्वरूप निर्धारित किया। इस स्वरूप में समाज या व्यक्ति संबंधी किसी भी सिद्धांत के प्रति दुराग्रह नहीं है, वरन् व्यक्ति को, व्यक्ति संभव दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति, उसके भविष्य के प्रति आस्था, सामाजिकता का व्यावहारिक निर्वाह तथा यथार्थ को ईमानदारी से अभिव्यक्ति करने की आकांक्षा विद्यमान है।"[1]

नयी कविता के संदर्भ में गिरिजाकुमार माथुर लिखते हैं- "मौजूदा कविता के अंतर्गत वह दोनों ही प्रकार कविता कही जाती रही हैं, जिनमें एक ओर या तो शैली, शिल्प और माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जाता रहा है। लेकिन नयी कविता हम उसे मानते हैं, जिसमें दोनों के स्वस्थ्य तत्वों का संतुलन और समन्वय है। यह कविता के नये शिल्प और उपमानों के प्रयोग के साथ समाजोन्मुखता और मानवता को एक साथ अंजलि में भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रही है।"[2] भारत की आजादी की अपार प्रसन्नता के साथ ही भारत विभाजन की पीड़ा ने तत्कालीन राष्ट्र में एक अलग ही निराशा, घृणा, बर्बरता की प्रवृत्ति को उभार दिया था। शारीरिक व मानसिक यातनाओं के लंबे चले क्रम ने आम आदमी के मन में मनुष्यता की भावना की छिन्न-भिन्न कर दिया था। एक विचित्र अविश्वास का जन्म पूरे राष्ट्र में हो चुका था। "प्रतिपल परिवर्तित राजनीतिक समीकरणों के कारण देश में अशांति बढ़ती जा रही थी। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, रिश्वतखोरी, कामचोरी अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहे थे। बेरोजगारी, शिक्षित नवयुवकों में निराशा कुंठा और अपराधवृत्ति जगा रही थी। इसी समय सन् 1974 में लोक नायक जयप्रकाश नारायण लंबे अंतराल के बाद पुनः राजनीति में उतर आये। आपातकाल के बाद यह स्थितियों और अराजक और अनियंत्रित हुई। इसके बाद का वातावरण जुलूसों, धरनों और तनाव से भर गया।"[3] आजादी के पश्चात् जो पीढ़ी पनपी

उस युवा पीढ़ी को वह राष्ट्र नहीं मिला जो गांधी और नेहरू के वादों का राष्ट्र था। उसे एक ऐसा वातावरण मिला जो प्रतिपल अस्थिर और अविश्वास, कुंठा, भ्रष्टाचार, निराशा आदि मनोवृत्तियों और सामाजिक विषमता के पंक में गहरे तक धंसा हुआ था। पढ़े–लिखे किंतु बेरोजगार पीढ़ियों को उनकी डिग्रियों और बौना कर रही थी। आजादी का 'झूठा सच' उनके सामने खड़ा था और उनके भविष्य पर 'तमस' की छाया साफ–साफ नजर आने लगी थी। ऐसे में नयी कविता ने आम आदमी के हर दुख दर्द को अपनाकर अपनी चेतना का हिस्सा बनाया। मानव अधिकार, मानवीय मूल्य, सामाजिक न्याय, 'स्व स्वातंत्र्य' काम व प्रेम संबंधों को देखने की नयी दृष्टि, व्यक्ति के तनावों और आत्मसंघर्ष का सटीक चित्रण करती, सरकारी चालाकियों पर गहरी कटाक्ष करती, आम आदमी के आंतरिक और बाह्य दोनों मन को सम्हालती हुई अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर थी। "नयी कविता शुद्ध मानवीय भूमि पर फली–फूली है। उसमें ऐसे व्यक्ति के निर्माण की इच्छा नहीं हैं, जो अपरिचित है, बल्कि वह उस व्यक्ति को खोजना चाहती है जो यहीं के मूल्य लेकर यहीं पर जी रहा है। नयी कविता का संबंध शुरू से ही जीवन की सामान्य सी दीखने वाली घटनाओं और स्थितियों से रहा है। प्रगतिवाद जहाँ घोषित रूप से किसान–मजदूर का पक्षधर रहा है, नयी कविता वहाँ चुपचाप मामूली आदमी की आम स्थिति का चित्रण करती है।"[4]

आम आदमी के मन की परतों की थाह लेने वाले रचनाकार। कवियों की बहुत लंबी फेहरिस्त में– कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, जगदीश गुप्त, दुष्यंत कुमार, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, भारत–भूषण अग्रवाल जैसे बहुत बड़े कवियों के नाम सम्मिलित है। इन नामों में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम भी अग्रणी है। जिनके कविता संग्रह 'शरणार्थी' के बहाने से मैं अज्ञेय और भारत विभाजन के समय को याद करना चाहती हूँ। अज्ञेय ने हिंदी कविता को एक नया मोड़ दिया। 'तार–सप्तक' से उन्होंने हिंदी कविता को एक नया संस्कार देना आरंभ किया। यद्यपि उनकी आरंभिक रचनाएँ परंपरा से अनुप्राणित थी। काव्य मर्मज्ञों के एक धड़े ने कविता के अथवा कविता में हो रहे इस नये संस्कार का विरोध भी किया। इस विरोध के पीछे यह मानना था कि इस प्रकार की कविताएँ जिन्हें 'नयी कविता' कहा जा रहा है पश्चिमी प्रेरणा से हिंदी में आ रही है। जहाँ एक ओर कुछ आलोचकों ने कविता के इस नये संस्कार का तिरस्कार किया तो वहीं कवियों और आलोचकों के दूसरे धड़े ने अज्ञेय की कविताओं को आत्ममन की ईमानदार अभिव्यक्ति कहकर स्वीकार किया।

"अज्ञेय पर अहंवादी, व्यक्तिवादी होने का लगातार आक्षेप होता रहा है, लेकिन अज्ञेय व्यक्तिवादी नहीं 'व्यक्तित्वादी' है। व्यक्ति की इयत्ता बनाये रखने पर भी वे उसकी समाज से संपृक्ति चाहते है। "यह दीप अकेला मदमाता है' है गर्व भरा पर उसको भी पंक्ति को दे दो।"– ऐसा एक कविता में उन्होंने कहा है। दीप वहाँ व्यक्ति है, पंक्ति है समाज।"[5] समाज के प्रति एक सजग दायित्व बोध का ऐसा ही

भाव उनकी कविता 'नदी के द्वीप' में भी मिलता है। अज्ञेय स्वयं कहते– "यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग–विराग नहीं बदले–प्रेम अब भी प्रेम है घृणा अब भी घृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है। पर यह भी ध्यान रखना होता कि राग वही रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गयी है और कवि–कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है। जैसे–जैसे वास्तविकता बदलती है– वैसे–वैसे हमारे उससे रागात्मक संबंध जोड़ने की प्रणालियाँ भी बदलती रहती हैं और अगर नहीं बदलती तो उस बाह्य वास्तविकता से हमारा संबंध टूट जाता है।"[6] अज्ञेय अंर्तमन व स्व के सत्य के साथ सदैव समाज के सत्य, परिवर्तन और परिस्थितियों से भी गहरे जुड़े रहे। भारत विभाजन से उत्पन्न भीषण परिस्थितियों को अज्ञेय ने 'शरणार्थी' कविता संग्रह में संकलित किया। यह सभी कविताएँ विभाजन और विभाजन के पश्चात् की स्थितियों को अत्यंत वास्तविकता और पैनेपन के साथ चित्रित करती हैं। यह भी प्रतीकात्मक ही था कि इस काव्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ भिन्न–भिन्न रेलवे स्टेशनों के प्लेटफार्म या प्रतीक्षालयों में लिखी गयी थीं। संग्रह की पहली कविता इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर लिखी गयी थी और वहीं अंतिम कविता आधी रात के किसी वक्त मुरादाबाद के किसी रेलवे स्टेशन पर लिखी गयी थी। अज्ञेय जैसे महत्वपूर्ण कवि द्वारा विभाजन और उससे उपजी पीड़ा और संत्रास के सीधे बयान वाली कविताओं पर आलोचकों की दृष्टि नहीं पड़ती है। "अज्ञेय की नजर में मानों देश 'मिर्गी के दौरे' सरीखी पीड़ा से जूझ रहा था। इस श्रृंखला की छठी कविता को 'समानांतर सांप' का नाम दिया है, जो सात भागों में बंटी हुई हैं। ये कविता सांप्रदायिकता के दो लंबे सांपों के बारे में है, जिन्होंने हिंदुस्तान के लोगों को अपनी जद में ले लिया है और अब दूर–दूर तक अपना जहर फेला रहे हैं। लोगों की आँख में दुश्मनी की फसल पक चुकी है।"[7] विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न मानवीय संकट की गंभीरता और व्यापकता का अनुमान आसानी से इसी बात से लगाया जा सकता है, कि अज्ञेय जैसे–रचनाकार ने विभाजन की परिस्थितियों पर एक दो नहीं कुल ग्यारह कविताएँ लिखीं। 'मिरगी पड़ी', 'ठाँव नहीं', 'रूकेंगे तो मरेंगे', 'मानव की आँख', 'गाड़ी रूक गयी', 'हमारा रक्त', 'श्री मर्द्धमधुरंधर पंडा', 'समानांतर सांप', 'कहती है पत्रिका', 'जीना है बन सीने का साँप', 'पक गयी खेती' आदि कविताएँ संकलित है। इन सभी कविताओं के माध्यम से अज्ञेय ने भारत विभाजन की परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण किया है।

अज्ञेय विभाजन की परिस्थितियों से इतने आहत हुए कि उन्होंने 'शरणार्थी' संग्रह के अतिरिक्त पाँच मजबूत कहानियाँ शरणदाता, लेटर बॉक्स, मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई, रमंते तत्र देवता, और बदला लिखकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति और भविष्य के अंधकार का आकलन किया। "देश–विभाजन की त्रासदी से संबंधित अज्ञेय जी की कविताएँ कहानियों से अधिक दृष्टि संपन्न हैं। लेकिन कविताओं की संवेदना कहानियों की संवेदना से एक तान है। देश का विभाजन भारतीय राजनेताओं की खोट से पैदा हुआ था, जिसे साम्राज्यवाद ने भरपूर राह दी थी। यथा–

"बैर की परनालियों में हँस-हँस के
हमने सींची जो राजनीति की रेत
उसमें बह रही खूँ की नदियाँ हैं
कल ही जिसमें खाक-मिट्टी कहकर
हमने थूका था-
घृणा की आज उसमें पक गई खेती
फसल काटने को अगली सदियाँ हैं।"[8]

विभाजन की घटना ने मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं को विदीर्ण कर दिया था। लोग अपने आगे के जीवन को लेकर, भविष्य को लेकर सशंकित थे। सब कुछ इतना भयावह घटा की मानों जीवन ठहर सा गया हो पर उस ठहरे हुए जीवन में मानव के लिए कोई ठाँव न थी। मानव जीवन के सम्मुख जब अस्तित्व का ही संकट पैदा हो जाए तो मानव गरिमा, अस्मिता, मानवाधिकार जैसे प्रश्न चुक जाते हैं। लोगों की आकांक्षा और मन:स्थिति के बहुत ही मार्मिक चित्र 'शरणार्थी' काव्य संग्रह की कविताओं के माध्यम से अज्ञेय ने खीचें हैं। वह उसके मन की निराशा और जीवन में 'सर्वाईवल' के संकटों पर समान रूप से अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। सामाजिक स्थिति और मन:स्थिति का एक साथ सटीक चित्रण अज्ञेय की कविताओं में उभरता है। शहर और गाँव के मध्य उत्पन्न अंतर को अज्ञेय अपनी कविता 'ठाँव नहीं' के माध्यम से क्या खूब पहचानते हैं।

यथा- "शहरों में कहर पड़ा है और 'ठाँव नहीं' गाँव में
अंतर में खतरे के शंख बजे, दुराशा के पंख लगे पाँव में
त्राहि-त्राहि! शरण! शरण!
रूकते नहीं युगल चरण
थमती नहीं भीतर कहीं गूंज रह एकसुर
रटना-
कैसे बचें, कैसे बचें, कैसे बचें
आन-मान वह तो उफान है गुरूर का
पहली जरूरत है, जान से चिपटना।"[9]

हिंदू-मुस्लिम संप्रदायवाद के समानांतर साँप थे। "अज्ञेय बार-बार आगाह करते हैं साम्प्रदायिकता के साँप से बचने की। वे जनता से आह्वान करते हैं, बार-बार चेताते हैं कि जिसे हम अपना कहते हैं वह ही हमें डस लेगा। साम्प्रदायिकता चाहे हिंदू हो या फिर मुस्लिम दोनों का चरित्र एक ही होता है और दोनों परस्पर दुश्मन नहीं बल्कि पूरक होते हैं और एक-दूसरे को फलने-फूलने के लिए खुराक उपलब्ध करवाते हैं। सांप्रदायिकता मनुष्य की इंसानियत को ढक लेती है। अज्ञेय बार-बार मनुष्य की इंसानियत को जगाने की बात करते हैं। मनुष्य की इंसानियत को जगाकर ही सांप्रदायिकता के साँप

को समाप्त किया जा सकता है। यथा–

"समाप्त किया जा सकता है।
किंतु भीतर कहीं
भेड़–बकरी, बाघ–गीदड़, साँप के बहुरूप के
अंदर............
कहीं पर रौंदा हुआ अब भी तड़पता है
सनातन मानव
क्षणभर रूको तो उसको जगा लें।"[10]

अज्ञेय ने उन्मादियों द्वारा बहाये रक्त को 'हमारा–रक्त' कहा है। अज्ञेय के अनुसार ये रक्त हमारे भाई–बहन और देशवासियों का है। कवि अपनी कविता 'मानव–मन की आँख' के माध्यम से हिंसा, रक्तपात और मानवता की भावना के ध्वंस को अभिव्यक्ति देते हैं। यथा–

"कोटरों से गिलगिली घृणा यह झाँकती है।
मान लेते यह किसी शीत रक्त, जड़–दृष्टि
जलन–तलवासी तेंदुए के विष नेत्र हैं
और तमजात सब जंतुओं से मानव का
बैर है
क्योंकि वह सुत है
प्रकाश का यदि इनमें न होता यह स्थिर
तप्त स्पंदन तो।
मानव से मिलती है मानव की आँख, पर
कोटरों से गिलगिली घृणा झाँक देती है।"[11]

भारत विभाजन के साथ ही दलितों, अछूतों की समस्या भी सामने आयी जिसका निदान सूझ नहीं रहा था। अज्ञेय ने 'कहती है पत्रिका' में इस समस्या को भी उठाया है।

यथा–

"चलेगा कैसे उनका देश?
मेहतर तो सब रहे हमारे
हुए हमारे फिर शरणागत–
देखें अब कैसे उनका मैला ढुलता है!
मेहतर तो सब रहे हमारे

हुए हमारे फिर शरणागत।
अगर वहीं के ये हो जाते
पंगु देश के सही, मगर होते आजाद नागरिक
होते द्रोही
यह क्या कम है यहाँ लौटकर
जनम-जनम तक जुगों-जुगों तक
मिले उन्हें अधिकार, एक स्वाधीन राष्ट्र का
मैला ढोवें?"[12]

"अज्ञेय की प्रश्नाकुलता में भारतीय समाज की वे चिंताएँ हैं जिनकी वजह से यह समाज अपनी मूल धुरियों से उतर रहा है और चारों ओर 'मरूथल' पैदा हो रहे हैं। मूलतः ऐसी ही चिंता कभी टी. एस. एलियट को व्यापी थी। एलियट के बौद्धिक संस्कार और विचार में 'वेस्लैंड' था, लेकिन अज्ञेय की प्रश्नाकुलता में 'भारत-भारतीयता' है। यहाँ एक प्रश्नाकुल कवि का चिंतातुर मन है जिसमें 'साँप सभ्य तो हुए नहीं' वाली बहस छिड़ी हुई है।"[13]

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में साम्प्रदायिक शक्तियों की क्रूरता, बर्बरता, हिंसा, उन्माद और घृणा की सघनता को दर्शाने के लिए उनकी तुलना हिंसक-पशुओं के साथ की है। उनके मनुष्यताहीन और विवेकहीन कार्यों के लिए 'मिरगी के रोगी' का रूपक रचा है-

"अच्छा भला एक जन राह चला जा रहा है.....
सहसा यों उसे मूर्छा आती है।
पुतली की जोत बुझ जाती है।
कहाँ गयी चेतना?
अरे ये तो मिरगी का रोगी है!
मिरगी का दौरा है।
आज जाने किस हिंसक डर ने
देश को बेखबरी में डँस लिया
संस्कृति की चेतना मुरझा गयी।
मिरगी का दौरा पड़ा इच्छा शक्ति बुझ गयी।"[14]

थोपी गयी विभाजन की परिस्थितियों ने मनुष्यता का क्षरण कर दिया। विभाजन से उपजी त्रासदी, शरणार्थियों की दयनीय हालत, धार्मिक उन्माद में पनपती घोर घृणा के वर्णन से मन्द पड़ती मानवता और शरणार्थियों के जीवन के संकट और भविष्य की चिंता अज्ञेय ने गहरी से सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से की है। सांप्रदायिकता के कुंठित विचार की तुलना कवि ने मिर्गी- जैसी बीमारी से की है।

"नयी कविता में अज्ञेय का काव्यात्मक विकास सबसे जटिल है। वे एक तरफ 'मैं' के कवि, आत्मान्वेषण का कवि हैं वही दूसरी तरफ वह कविता लिखते हैं,"

"'यह जो मिट्टी गोड़ता है,
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ.....
जो भी जहाँ भी पिसता है, पर
हारता नहीं न मरता है
पीड़ित, श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव.....
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, सृष्टा
उसकी मैं कथा हूँ।"[15]

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि अज्ञेय जितने आत्मपरक है उतने ही समाजपरक। अज्ञेय की कविताओं में यहीं समाज अपनी समस्त अच्छाइयों और बुराइयों के साथ प्रकट होता है। अज्ञेय ने अपने कविता संग्रह के माध्यम से 1947 के समय भारत–विभाजन, सांप्रदायिकता की आँच, बर्बरता, पशुता, राजनीतिक चालाकियों में निरीह निर्दोष जनता के पीसने की नीयती को बहुत साफ शब्दों के अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय की भारत विभाजन पर आधरित कहानियों में भी मनुष्यता के छीजने का दर्द गहरे घनत्व के साथ उतरता है।

"नयी कविता में मुख्य प्रयत्न समकालीन सच्चाई का सीधा साक्षात्कार करने और इस साक्षात्कार को जीवंत और व्यवस्थित भाषा में चरितार्थ करने का रहा है। अज्ञेय का मुहावरा ज्यादातर आत्म–साक्षात्कार का रहा है, लेकिन शहरी सभ्यता बड़े शहर और पश्चिमी संस्कृति आदि पर लिखी गई 'बावरा अहेरी', 'हरी घास पर क्षण भर', 'हवाई यात्रा', 'ऊँची उड़ान', 'पश्चिम के समूहजन', 'हिरोशिमा', 'महानगर 'रात' इत्यादि कविताएँ सभ्यता से उलझने का साक्ष्य हैं। इन कविताओं में अज्ञेय ने सशक्त ढंग से समकालीन संस्कृति के सतही छिछलेपन, यांत्रिकता, अकरूणा और दूसरे अंतर्विरोधों की काव्यात्मक खोज की हैं। इन सभी कविताओं में अज्ञेय की मुद्रा तटस्थ दर्शक, यात्री या अधिक से अधिक गवाह की है।"[16]

यह जो गवाह होने की स्थिति है वह ही अज्ञेय को वास्तविकता से मुँह नहीं मोड़ने देती और आत्म सत्य, समाज सत्य की सच्चाइयों को बयान करने की ताकत भी देती है। अज्ञेय ने अपने अंतर्मन और आत्मविश्लेषण से जहाँ 'स्व' की पहचान की है वहीं करूणा की भी पहचान करते हैं। दु:ख को समझते हैं और व्यक्ति को दुख से भी सीखने को प्रेरित करते हैं। अज्ञेय का साहित्य सदैव ही अपने मन और समाज के सत्य की शिनाख्त करने वाला एक ऐसा आईना होगा जिसकी चमक और

पारदर्शिता साहित्य की दुनिया को सदैव सच्चा प्रतिबिम्ब ही दिखाने का प्रयास करेगी। अंत में उन्हीं की कविता से दु:ख और मनुष्यता के केंद्रीय भाव को समझते हुए–

"दु:ख सबको माँजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने,
किंतु, जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको
मुक्त रखें।"[17]

इस कविता के मंतव्य में निहित गहरे अर्थ को पा जाना ही 'मनुष्यता' के भाव को पा लेना है।

संदर्भ सूची

1. नयी कविता– देवराज, पुस्तक की भूमिका से
2. नयी कविता– देवराज, पुस्तक की भूमिका से
3. नयी कविता– देवराज, पृ.21
4. नयी कविता की पहचान : सर्वेश्वर की कविताएँ– रामस्वरूप चतुर्वेदी, कल्पना : जनवरी, 1976, अंक–1, पृ.20
5. अज्ञेय एक अध्ययन : भोलाभाई पटेल, पृ.50
6. नयी कविता और अस्तित्ववाद : रामविलास शर्मा, पृ.58
7. 'द वायर' वेबसाइट– माध्यम गूगल
8. कवि कहानीकार : अज्ञेय संवेदना और दृष्टि, डॉ०. भरत सिंह, पृ.74
9. 'ठाँव नहीं' कविता– शरणार्थी काव्य संग्रह– अज्ञेय
10. अज्ञेय की कविता में विभाजन की त्रासदी– डॉ०. सुभाष चंद्र, पृ.4 (शोध आलेख से)
11. कवि कहानीकार : अज्ञेय संवेदना और दृष्टि– डॉ०. भरत सिंह, पृ.74
12. 'कहती है पत्रिका'– शरणार्थी काव्य संग्रह : अज्ञेय
13. अज्ञेय : कृष्ण दत्त पालीवाल, पृ.95
14. मिर्गी पड़ी : अज्ञेय 'शरणार्थी काव्य संग्रह से
15. अज्ञेय : वैकल्पिक आधुनिकता के कवि, शंभुनाथ (आलेख से)
16. अज्ञेय सहचर : संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ.54
17. अज्ञेय रचनावली : खंड पाँच– 'नदी के द्वीप', संपादन–कृष्णदत्त पालीवाल

आदिवासी साहित्य का अन्य साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन

दीपक ठाकुर
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय,
धनबाद

बीज शब्द- आदिवासी, संस्कृति, सशक्तिकरण, साल, दस्तावेज, दैत्य, औपनिवेशिक

आदिवासी साहित्य का अन्य साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। तमाम पक्षों, लोक, धर्म, संस्कृति आदि पर विशेष रूप से प्रकाश डालकर आलोच्य साहित्य की विशेषताओं को उभारने का काम किया गया है। आदिवासी साहित्य के बहाने आदिवासियत के विभिन्न पहलूओं का चित्रण भी अनायास ही हो पड़ा है।

आदिवासी साहित्य का परिचयात्मक व्याख्या ही यही है कि वह जमीन का साहित्य है। जमीन की उपज है और जमीन का चित्रण है। इसलिए हवाई साहित्यिक दावों का उसके समक्ष आकर अनर्गल चित्कार करना लाजमी है। प्रयोगशाला और सांचो में बना साहित्य खूबसूरत सजावटों से सुसज्जित तो हो सकता है परंतु उसकी कृत्रिमता उसपर हावी होती है। वहीं जमीन से उपजा साहित्य जीवित अनुभुति का दास्तान कहता है। उसमें हवा, आंधी, ओले से निपटने का अनुभव समाया होता है और जीवंतता को चिरंजीवी बनाए रखने के लिए बीच-बीच में पानी नही छिड़कना पड़ता।

आदिवासी साहित्य के सृजनात्मक रूपरेखा पर यदि हम दृष्टि केन्द्रित करें तो यह सहज ही जान पड़ेगा कि इसका जन्म संघर्षरत समाज के वजूद को रेखांकित करने के लिए हुआ है और अपने जन्म के उदेद्श्यों पर यह भलीभांति खरा उतरा है।

गंगा सहाय मीणा कहते हैं कि *"पिछले कुछ दशकों में दुनियाभर में ऐसी परिस्थितियां निर्मित हुई हैं कि लगभग हर जगह के आदिवासियों ने स्वयं को शोषित, अपमानित कहना और कहलवाना शुरू किया है। इससे पहले भी ये उपेक्षित थे, लेकिन न तो विश्व समुदाय ने इनकी ओर ध्यान दिया और न ही इन्होंने स्वयं खुद को शोषित के रूप नें प्रस्तुत किया। पूंजीवाद के विस्तार के साथ ही उदारवादी नीतियों के चलते आदिवासियों या देशज समूहों के जल, जंगल, जमीन को उनसे छीना जाने लगा। इससे*

पहले स्थानीय शासकों का आदिवासी समुदायों के जीवन में दखल सीमित था। औपनिवेशिक सत्ता ने आदिवासियों पर अत्याचार जारी रखे, जिनके खिलाफ आदिवासी विद्रोह भी करते रहे। पूंजीवादी भूख ने तथाकथित मुख्यधारा से कटे आदिवासी समुदायों को निशाना बनाया, जिसकी दुनियाभर में प्रतिक्रिया भी हुई और लोगों का इस ओर ध्यान गया।"[1]

आदिवासी साहित्य इसी जमीनी जुड़ाव का मूर्त रूप है।

जब निर्मला पुतुल कहतीं है –

"क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए
एक तकिया
कि कहीं से थका-मांदा आया
और सिर टिका दिया
....
कोई डायरी
कि जब चाहा
कुछ न कुछ लिख दिया
खामोश खड़ी दीवार
कि जब जहां चाहा
कील ठोक दी
कोई गेंद
कि जब तक
जैसे चाहा उछाल दी
या कोई चादर
कि जब जहां जैसे-तैसे
ओढ़- बिछा ली?"[2]

आदिवासी साहित्य का एक बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है उसकी स्त्री स्वतंत्रता। आदिवासी समाज अपने स्वतंत्र स्त्री मूल्यों के मामले में बाकी समाज से काफी आगे है। यही स्वतंत्रता उनके साहित्य में भी गुंजायमान होती है। वर्तमान समय में निर्मला पुतुल, जसिंता केरकेट्टा, वंदना टेटे जैसी प्रमुख स्त्री रचनाकारों ने मोर्चा संभाला हुआ है। इनका लेखन स्त्री मुददों पर तो बात करता ही है साथ ही साथ तमाम संघर्ष बिन्दुओं पर भी अपनी उपस्थिति बनाए हुए है।

इस तरह के सहज चित्रण ही आधार है आदिवासी साहित्य का जो मुख्यधारा की श्रृंगार परक रचनाओं के सापेक्ष खुद की उपस्थिति और संघर्ष को दस्तावेजी रूप में प्रस्तुत करती है।

रीतिकालीन कवि भूषण की पंक्तियां देखिए –

"इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।
पौन बारिवाह पर, शंभु रतिनाथ पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।"[3]

इस तरह की भाषायी खेल में उत्कृष्ट रचनाओं का जिस साहित्यिक परंपरा में रिवाज रहा हो वहां एक निराला आते हैं और तमाम विरोधों को झेलते हुए मुक्त छंद की वकालत करते हैं। कालांतर में जब आदिवासी लेखन अपने चैतन्य को प्राप्त करना चाहता है तो वह इस सहज पद्धति को हाथोंहाथ लेता है और अपने विमर्श को प्रस्तुत करता है। एक युगों से चली आ रही परंपरा को तोड़कर अपनी स्वतंत्र स्वच्छंद धारा का सदानीरा प्रवाह बनाना बहुत मुश्किल काम है। वो भी उस समाज के द्वारा जिसे तथाकथित मुख्य समाज ने दशकों तक हाशिए पर रखा हो।

महादेव टोप्पो कहते हैं –

"फिलहाल आदिवासियों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य मात्र समाजशास्त्रीय किस्म का लेखन या सब्लार्टन लेखन का विस्तार भर नहीं है, बल्कि कहा जा सकता है कि वंचितों, उपेक्षितों के मुंह खोलने से भारतीय समाज की अधूरी अभिव्यक्ति, अब पूर्णता प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो रही है। जनतान्त्रिक देश में अपने भाषायी एवं सांस्कृतिक अधिकारों की दिशा के अस्तित्त्व को संघर्ष एवं विचार–विमर्श तो होना ही चाहिए ताकि समाज के विभिन्न परतों को समझा जा सके और उनका विकास किया जा सके। आदिवासी साहित्य में तिरस्कार, शोषण, भेदभाव के विरोध एवं गुस्से का ही स्वर नहीं उभर रहा है बल्कि विकास के तथाकथित दैत्य से दो–दो हाथ हो लेने का जज्बा भी इसमें है।"[4]

निश्चित तौर पर अपने संघर्ष चित्रण के मामले में आदिवासी साहित्य भारत की वर्तमान साहित्यिक धाराओं में अग्रणी स्थान पर विराजमान है। विभिन्न सामाजिक मुद्दों को लेकर प्रखर स्वर रचनाकारों में देखा जाता है। इसी तर्ज पर मैनें "पहाड़ी लड़की" में लिखा था –

"आधार खोती साल की जड़ें
भूमिगत तरंगीय जालों से
हार जाती है द्वन्द,
बलि को प्रस्तुत किसी असहाय जीव
सा सौंप देती है
अपना वजूद,

बख्श दो महामानव!
जंगलीपन मेरी अस्मिता है,
इन्हीं से तो मैं झारखंड हूँ।"[5]

अपने वजूद से जब तथाकथित विकास के मॉडल आकर टकराते हैं तो वो विकास कम करते हैं तथा हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को अधिक तार–तार करते हैं। और ये शक्तियां इतनी बलवान होती है कि जन आवाज को दरकिनार कर अपनी नीतियों को थोपना चाहती है। उस वक्त सशक्त रचनाकारों के शब्द ही उनसे लोहा लेते हैं और अस्तित्त्व रक्षा की पुकार को जन–जन तक पहुंचाते हैं।

अस्तित्त्व के चित्रण का बहुत सुंदर रूप हमें ष्पत्थलगड़ीष की भूमिका में दिखाई देता है। अनुज लुगुन कहते हैं –

"मेरी कविता अपने पूर्वजों का शुक्रिया अदा करती है कि उन्होनें सहजीविता की जीवन दृष्टि दी और पत्थरों को जीवन का अभिन्न हिस्सा बनाया। कला में सहजीविता जीवन में स्वायत्तता का सूचक है। अब जबकि समूचा जीवन ही विज्ञापनों और सूचना तन्त्रों के जंजाल में कैद है ऐसे में सहजीविता और स्वायत्तता की बात करना स्वाभाविक विद्रोह है। औपनिवेशिक समय में जब शासन ने आदिवासियों से उनकी जमीन का मालिकाना सबूत मांगा तो कचहरी में आदिवासियों के साथ पत्थर भी खड़े हुए। अंग्रेजों की अदालत नें आदिवासियों के पक्ष में पत्थरों की गवाही को स्वीकार नहीं किया। उनकी जमीन पर सेंध लगाने के लिए अंग्रेजों ने उनके पत्थरों के प्रयोग पर निषेध लगाया। उसके बाद जब–जब आदिवासियों ने अपनी जमीन पर दावा किया, तब–तब शासन ने उनकी पत्थलगड़ी पर निषेध लगाया। सहजीविता और स्वायत्तता को कुचलने की शासन की साजिश बहुत पुरानी है। दुखद है कि आज भी कई आदिवासी गांव पत्थलगड़ी करने के आरोप में देशद्रोही माने गये हैं। आज जब फिर से आदिवासियों से उनकी जमीन का पट्टा मांगा जा रहा है तो पत्थर फिर से उनके पक्ष में गवाही के लिए खड़े हुए है। इस बार आदिवासियों के साथ केवल पत्थर ही नहीं खड़े हैं बल्कि उनके साथ कविता भी खड़ी हो गयी है।"[6]

प्रस्तुत चित्रण को सम्पूर्ण रूप से यहां उल्लेख करने का उद्देश्य सिर्फ यह दर्शाना है कि आदिवासी साहित्य मनोरंजन की वस्तु नही हैं वरन् अपने अतीत का दस्तावेजीकरण है। जो परंपरा वाचिकता में खुद को उत्तरोत्तर जिलाते आई थी उसे आज खुद को लिपिबध्द करना जरूरी हो गया था। और उसने इस कार्य के लिए बड़े–बड़े उबाउ ग्रंथ नहीं लिखे वरन् साहित्य की तमाम विधाओं को ही इसका माध्यम बना लिया।

डॉ० कर्मानन्द आर्य कहते हैं "यथार्थ बहुत कड़वा है। झारखंड प्राकृतिक संसाधनों वाला एक राज्य है जिसे उपनिवेशवाद के तहत लगातार लूटा गया। यहां मुझे राम दयाल मुंडा के निर्देशन में बीबीसी

हिन्दी द्वारा बनाई गयी एक डॉक्यूमेंट्री याद आती है जो वहां पर्यावरण के कुप्रभावों का बहुत गहनता से छानबीन करती है। झारखंड को पृथक राज्य बनाने के संघर्ष के पीछे यह कल्पना थी कि एक ऐसा राज्य स्थापित हो, जहां वन एवं खनिज संसाधनों पर आदिवासियों का मालिकाना हक और प्रभुत्व हो, लेकिन इसके ठीक विपरीत विकास के नाम पर झारखंड में अंधाधुंध औद्योगिकरण और खनन गतिविधियों तथा अन्य परियोजनाओं ने आदिवासी समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति को संकटमय बना दिया है। जल, जंगल-जमीन और खनिजों को पूंजीपतियों और उद्योगपतियों के हाथों सौंपने के लिए करीब 110 एमओयू हुए हैं जिनमें 60 प्रतिशत एमओयू खनन के लिए हैं।"[7] अपने हक और हुकूक की लड़ाई के लिए आदिवासी साहित्य सदा मुखर रहता है। जहां एक तरफ इन विशाल समस्याओं का मुखर चित्रण आदिवासी साहित्य में होता है वहीं कुछ स्याह पक्ष भी है जिन्हें रेखांकित करना जरूरी है। सशक्तिकरण कविता में पंक्तियां आती है –

"दरोगा बेसरा के घर अब
मेहमान आते तो मेढ़ा नहीं
कुर्सी पर बैठते,
सुबह-सुबह भात सिझने की जगह
चप-मुड़ी खाया जाता,
सुअर मारने की जगह
टेशजोड़िया मोड़ से लाया जाता
गोटा चिकन,
आदिवासी रिजर्वेशन की
मुखिया सीट से चौतरफा खुशी थी
दरोगा, ब्लॉक के बाबू,
वार्ड के दलाल, सरकार।
सबकी खुशी के अपने पैमाने भी थे।"[8]

प्रस्तुत पंक्तियां आदिवासी रिजर्वेशन के तले पंचायत और ब्लॉक स्तरों पर हो रहे चुनावी धांधली को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। गांवो की सरकार चुनने के पीछे किस तरह से दीकूओं के जाल में आदिवासी फंसते है उसका चित्रण दिखाई देता है। आदिवासी रिजर्वेशन के जहां सौ फायदे मिले हैं वहां अब भी भोले-भाले आदिवासियों को मोहरा बनाकर तंत्र के अंदर प्रवेश पाने और लूट जारी रखने के उदाहरण भी कम नही हैं।

इस तरह के सपाटबयानी और संघर्ष गाथाओं का दस्तावेजीकरण तथाकथित मुख्यधारा की रचनाओं में नही मिलता है। वहां अलंकारपरकता के नीचे कई जीवंत प्रतिमान दम तोड़ देते हैं।

संस्कृति के मामले में आदिवासी साहित्य प्रकृति रक्षा का पक्षधर है। आदिवासियों की स्संस्कृति प्रकृति सापेक्ष है। प्रकृति के बिना न तो यहां कोई त्योहार मनाया जाता है न ही कोई रीति–रिवाज संपन्न होता है। चाहे सूर्य की पूजा हो, चाहे सखुआ का पेड़ हो या महुआ का पेड़ हो इस तरह के सैकड़ो उदाहरण मिलते हैं जो प्रकृति के साथ पल्लवित होते संस्कृति को दर्शाता है। सखुआ पेड़ के बारे में तो कहा जाता है कि इसका संबंध महाभारत काल से है। ऐसा माना जाता है कि जब महाभारत युद्ध चल रहा था तो मुंडा जनजातीय लोगो ने कौरव सैना की तरफ से लड़ाई में हिस्सा लिया था जिसमें कई जनजातीय योद्धाओं ने अपनी जान गंवाई थी इसलिए उनके शवों को पहचानने के लिए उनके शरीर को साल के वृक्षो के पत्तों और शाखाओं से ढका गया था। लेकिन आश्चर्यजनक बात ये रही कि जो शव सखुआ के पत्तों से ढका था वो शव सड़ने से बच गए। जबकि बाकि पत्तों से ढका शव सड़ गए थे। इसके बाद से ही आदिवासियों का इस पेड़ के प्रति विश्वास और गहरी हो गई। इस तरह के चित्रण भी कई रूपों में मिलता है। सावित्री बड़ाईक कहती हैं – "जंगल, पहाड़ आदिवासियों के लिए आनंद, संस्कृति और जीवन संघर्ष का आधार है। यही आनंद, उमंग, संघर्ष कर्मशीलता आज भी आदिवासियों के समूहों में देखी जा सकती है। कालांतर में प्रकृति के विभिन्न उपादानों पर कुछ ही व्यक्तियों के समूह का अधिकार होने लगा और सामूहिकता थोड़ी कम होने लगी तो धीरे–धीरे खेती और उपज के कारण परिवार और गांव बनने लगे। इस प्रकार कृषि संस्कृति ने आदिवासियों के अंदर ग्रामीण संस्कृति को पनपने में मदद की।"[9]

इसी तरह चाहे सांस्कृतिक पक्ष हो, चाहे लौकिक पक्ष हो, चाहे संघर्ष का चित्रण हो, आदिवासी साहित्य सभी पक्षो को मजबूती के साथ रेखांकित कर रही है।

निश्चित तौर पर आदिवासी साहित्य का फेलाव उसके संघर्ष गाथाओं का वितान है जिसमें सम्पूर्ण आदिवासियत उकेरा हुआ है। मुख्यधारा की तमाम कालजयी रचनाओं के समक्ष रखकर जब हम आदिवासी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो इस साहित्य का खुदरंग रूप इसे अलहदा बनाता है और अपनी जमीन से एक अनहद संपर्क स्थापित करता हुआ मार्ग को प्रज्ज्वलित करता है।

आदिवासियत के बारे में कहा भी गया है कि

सेनगे सुसुन, काजिगे दुरंग अर्थात जहां चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत संगीत है। वैसे समाज के साहित्यिक धारा की मधुरता और मिठास की कल्पना भी सुखद है।

संदर्भ सूची

1. मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 9
2. मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 53

3. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली : कमल प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 181
4. टोप्पो, महादेव, सभ्यों के बीच आदिवासी, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, 2021, पृष्ठ 79
5. ठाकुर, दीपक, पहाड़ी लड़की, जयपुर : कलमकार मंच, 2021, पृष्ठ 61
6. लुगुन, अनुज, पत्थलगड़ी, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2021, भूमिका
7. लुगुन, अनुज, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 99
8. ठाकुर, दीपक, पहाड़ी लड़की, जयपुर : कलमकार मंच, 2021, पृष्ठ 95
9. बड़ाईक, सावित्री, आदिवासी पत्रिका, रांची : प्रमण्डलीय जन संपर्क कार्यालय, 2020, जनवरी, अंक 245

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

हरिशंकर परसाइ की रचनाएँ: मानवतावादी परिप्रेक्ष्य के आलोक में

अनुपमा कुमारी
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद

समाज के अस्तित्व के बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इस तादात्मय के कारण हम साहित्य को उपजीव्य और समाज को उपजीवक कह सकते हैं। मैण्जर पाण्डेय इसी अर्थ में साहित्य कर्म की पूरी प्रक्रिया को सामाजिक व्यवहार का ही विशिष्ट रूप मानते है। समाज के सतत् विकास में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानवीय संस्कृति को संरक्षित करने से लेकर सामाजिक समरस्ता को बनाए रखने के विराट उद्देश्य को साहित्य वहन करता है। चूँकि साहित्य मानव द्वारा संचित और सृजित है तो मानव को केन्द्र में रखना साहित्य का मुख्य ध्येय हो जाता है। साहित्य में मानवतावादी दृष्टिकोण ही उसे युगों तक प्रभावशाली बनाए रखती है।

'मानवतावाद' शब्द अंगेजी के (Humanism) शब्द का हिन्दी पर्याय है, जिसका केन्द्र बिन्दु मानव है। यह दर्शन मानव की सर्वोच्चता में आस्था रखता है। मानव कल्याण और उसके बहुमुखी विकास हेतु जो भी साधन उपयोगी है उन सबका संबंध मानवतावाद से है। इसके अनुसार मानव से परे और कुछ भी नहीं है। ईश्वरीय सत्ता एवं स्वर्ग–नर्क जैसी बातों में इसका कोई विश्वास नहीं है।

मानवतावाद उन सभी विचारों एवं दृष्टिकोणों को व्याख्यायित करता है जिनके मूल में मानव की प्रतिष्ठता उसका सम्मान एवं प्रेम की स्वीकार्यता, उसके जीवन के सर्वागीण विकास हेतु आवश्यक परिस्थितियों के निर्माण में सहायक है।

हिंदी साहित्य में मानवतावाद का विकास

भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य में मानवतावादी तत्व पुरातन से ही विद्यमान रहे हैं। श्रीमद्भागवतगीता, रामायण और रामचरित्र मानस मानवतावादी मूल्यों के आधार ग्रंथ कहे जा सकते हैं। बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म तो मनुष्य की ही नहीं अपितु सभी जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। 'राम' और 'कृष्ण' चिरंतनकाल से ही एक ऐसे पुरूष की प्रतिमा है, जिनमें समाज के कल्याणार्थ हेतु सारे गुण विद्यामान हैं। डॉ० रामचन्द्र तिवारी का मत है *"राम मानवता के चरम विकासित*

आध्यात्मिक गुणों की समष्टि है, जो पीड़ितों के हित के लिए अवतार लेते है। लोक पीड़िकों का मूलोच्छेद करने के लिए कटिबद्ध रहते है"[1] भारतीय दार्शनिकों एवं चिंतकों ने भी मानवीय मूल्यों के स्थापना में अमूल्य योगदान दिया है।

भारतीय नवजागरण के आगमन के साथ ही हिन्दी साहित्य नवीन विषयों की तरफ अग्रसरत होता है स्थूल श्रृंगारिकता से मुक्त हो साहित्य सामान्य जन से जुड़ता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर जनकवि नागार्जुन तक का साहित्य मानवीय संवेदनाओं का पक्षधर है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवतावादी दृष्टि से इतर साहित्य को साहित्य की श्रेणी में नहीं रखते। वह साफ शब्दों में इंगित करते है *"जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हदय को पर दु:खकातर और संवेदनशील न बना सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"*[2] हिन्दी साहित्य में असंख्य रचनाकार है जिन्होंने साहित्य को कला के लिए नहीं अपितु मानव के उत्थान हेतु आवश्यक समझा। हम निसंकोच होकर हरिशंकर परसाई को इन रचनाकारों के अग्रीम पंक्ति में शामिल कर पथ प्रदर्शक के रूप में देख सकते है।

हरिशंकर परसाई की रचनाओं में अभिव्यक्त मानवतावादी भावबोध

स्वाधीन भारत में जानता को शासक, वर्ग (नेताओं) से गहरी अपेक्षाएँ थी। वे इस विश्वास में थे कि अंग्रेजी सत्ता पलायन के फलस्वरूप उन्हें देशी सत्ता से वह सब कुछ प्राप्त होगा जिसके तलाश में अधिकाधिक लोगों ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। किन्तु अपेक्षाओं के विरूद्ध उन्हें निराशा ही हाथ लगी। तत्कालीन जनता ने अकाल भोगा, आपातकाल झेला, चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध के मूकेदर्शक बने। हरिशंकर परसाई की संपूर्ण रचनाएँ इन्हीं कटु सत्य को आत्मसात् करती है। परसाई स्वयं यह स्वीकार करते कि उन्होंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए हथियार रूप में अपनाया है। परसाई की मानवतावादी दृष्टि न सिर्फ नम्न यथार्थवाद को स्वीकारती है बल्कि उसे एक चुनौती के रूप में लेती है। परसाई मानवतावाद के विषय में लिखते है। *"हमारा मानवतावाद अलग होता है कि हम दु:ख देनेवाले को ऐडन्टिफाई करते है। ...... यह व्यवस्था जिसमें हम जी रहे हैं जिसकी शिकायत करते है बदलना भी चाहते हैं, क्योंकि वे अमानवीय है, क्योंकि वह अमानवीयकरण पर ही टिकी है"*[3]

परसाई जी यह मानते हैं कि देश में जो अमानवीकरण फैल रहा है और उससे उत्पन्न हो रहे भष्ट्राचार, जातिवाद, रूढ़िवाद, असमानता, सांप्रदायिकता इत्यादि को केवल चर्चा द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। हर वर्ग हर समुदाय को आगे बढ़कर अपनी प्रखर वाणी द्वारा इसका विरोध करना होगा। वह आंशिक सुधार के भी हिमायती नहीं है वह पूरे समाज में नायपन चाहते है।

परसाई के शब्दों में कहे तो *"वास्तविकता यह है कि आज परिवर्तन की मांग बहुत है। यहाँ-वहाँ सुधार से काम नहीं चलेगा। पूरा ही परिवर्तन चाहिए। इसमें जो बाधक, उन्हें जानना चाहिए कि इतिहास जब आगे बढ़ता है तब उसके रोकने वाले के हाथ टूट जाता है।"*[4]

परसाई की अनेक रचनाएँ है जो सतही तौर पर व्यंग्य का कलेवर लिए है पर उसकी अंतर्वस्तु के गर्भ में छिपे हैं गहरी मानवीय संवेदना जो अव्यक्त है। प्रस्तुत हैं परसाई की कि कुछ कालजयी रचनाएँ जो मानवीय संवेदना की अमिट छाप छोड़ती है।

(क) 'अकाल उत्सव': हरिशंकर परसाई की चर्चित रचनाओं में से एक है। शीर्षक के नाम से ही व्यंग्य की सार्थकता स्पष्ट है 'अकाल उत्सव' जो किसी खास वर्ग के लिए उत्सव है। 'अकाल' जैसी विभीषिका भी कुछ लोगों के लिए पैसे कमाने का साधन है, सरकार और व्यापारी वर्ग का गठबंधन एक सच्चाई है। अकाल के लिए इंद्रपूजा होती है पहले इन्द्रपूजा वर्षा के लिए होती थी मगर अब अवर्षा के लिए इन्द्रपूजा होती है। इंजीनियर की पत्नी भजन गाती है। *"प्रभु कष्ट हरो सबका भगवान पिछले साल अकाल पड़ा था तब सक्सेना और राठौर को आपने राहत कार्य दिलवाया था। 'प्रभु इस साल भी इधर अकाल कर दो इनको' राहत कार्य का इंचाई बना दो।"*[5] यह कहानी मानवीय मूल्यों के पतन को उजागार करती है। मानव! तुम सबसे सुन्दरतम की कल्पना जब यथार्थ के धरातल से टकराती है तब परसाई जैसे सशक्त रचनाकार को जन्म देती है।

व्यंग्यकार पेमजनमेजय इस कहानी के बारे में लिखते है- *"व्यंग्य की करूणा में परिणक्ति कैसे होती है, यदि इसकी तलाश किसी स्वनामधन्य आलोचक को करनी हो तो वह इस रचना का पाठ करें। हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के लिए हास्य की बैसाखी को कभी स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि उनके साहित्य में फूहड़ का कोई स्थान नहीं।"*[6]

(ख) भोलाराम का जीव: भोलाराम का जीव कहानी का मुख्य विषय सरकारी दफ्तरों के कर्मचारियों की अकर्मण्यता और रिश्वत खोरी की समस्या को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना है। हास्य रस के कलेवर से परिपक्व यह रचना सरकारी तंत्र की निष्क्रियता एवं असफलता की कहानी बड़ी रोचकता के साथ प्रस्तुत करती है। गरीबों की अपेक्षा और उनकी दीनता इस कहानी का प्राणदायक अणु है। अवकाश प्राप्त भोलाराम पाँच वर्षो से पेंशन चालू कराने हेतु सरकारी दफ्तरों का चक्कर काटकर थक गया है, कारणवश भयानक गरीबी में उसका परिवार डुब गया। परिवार की बदहाल स्थिति की चिंता में घुलते और भुखे-मरते-भरते भोलाराम ने अंतः दम तोड़ दिया। नारद से भोलाराम की पत्नी का यह कथन समाज के समक्ष बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है..... "बताऊ? गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गये पेंशन अभी तक नहीं मिली।"[7] गरीबी की बीमारी इस वाक्य में गहरा व्यंग्य है जो समाज में व्याप्त अमानवीकरण को उजागर करता है किस प्रकार अपने ही हक के पैसे के लिए लोग दफ्तरों का चक्कर काटते हैं।

मैं नरक से बोल रहा हूँ:

यह कहानी थी भुख से पीड़ित मनुष्य की है जो भुख के कारण तड़प कर मर गया। परसाई इस छोटी सी कहानी के माध्यम से समाज के दोहरे मापदंड को उजागर करते है। *"हे पत्थर पूजने वालो जिन्दा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। जीवित अवस्था में तुम जिसकी और आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो। मरते वक्त उसके हाड़ गंगाजी ले जाते हो। अरे तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार हो। इसीलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। मैं नर्क से बोल रहा हूँ।"*[८] ये पंक्तियाँ मनुष्य की खोखली सहानुभूति पर कुठाराघात करने लिए काफी है। सभ्यता और संस्कार ने मनुष्य को उपासक तो बनाया किन्तु केवल स्थूल श्रृंगार का मनुष्यता का नहीं?

निष्कर्ष:- परसाई सच्चे अर्थो में मानवतावाद के पोषक और संरक्षक थे। उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय में थी। शिल्प की दृष्टि से भले ही वह खरी न उतरे पर उद्देश्य की दृष्टि से वह अतुलनीय है।

संदर्भ सूची

1. सिंह बच्चन, क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2003
2. अशोक के फूल (मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है)
3. परसाई रचनावली- भाग 6 पृष्ठ- 295
4. परसाई रचनावली- भाग 6 पष्ठृ- 295
5. हरिशंकर परसाई: चुनी हुई रचनाएँ (भाग- 1) पृष्ठ- 178
6. हिन्दी व्यंग्य की धार्मिक पुस्तक: डॉ प्रेम जनमोजय
7. हरिशंकर परसाई: चुड़ी हुई रचनाएँ (भाग- 1)

हिंदी की प्रमुख बोलियाँ और उनके अन्तरसंबंध का अध्ययन

नीशु यादव

'कोस–कोस पर बदले पानी और चार कोस पर बानी' हमारे देश में हर कोस अर्थात् थोड़ी–थोड़ी दूर पर पानी का स्वाद बदल जाता है और 4 कोस पर बानी अर्थात् भाषा (बोली) बदल जाती है। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में बोलियों को लेकर जहाँ एक ओर यह कहावत प्रसिद्ध है, वहीं दूसरी ओर विदेशी अँगरेजी विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी को आम बोलचाल की महाभाषा कहा है। राजभाषा हिंदी अनेक बोलियों का समुच्चय है। बोलियाँ हिंदी की प्राणधारा है। हिंदी एक विशाल वृक्ष है, तो बोलियाँ उसकी शाखाएँ। हिंदी और उसकी समस्त बोलियाँ अपभ्रंश के सात रूपों से विकसित हुई हैं। जिसमें शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी और गुजराती हिंदी विकसित हुई है, और पूर्वी हिंदी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। हिंदी में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिसमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, बघेली, हड़ौती, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी आदि प्रमुख हैं। हिंदी की ब्रजभाषा और अवधी बोलियाँ उत्कृष्ट साहित्य रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। यह बोलियाँ भारत की विविध संस्कृतियों को स्वयं में संग्रहित किये हुए हैं। बोलियाँ ही भाषा की जड़ों को गहराई व दृढ़ता प्रदान करती है।

हिंदी की प्रत्येक बोलियों की उपबोलियाँ हैं जो अपने आप में एक बड़ी परम्परा व इतिहास के साथ–साथ स्थान विशेष की सभ्यता को बटोरे हुए हैं। भाषाशास्त्र की दृष्टि से हम हिंदी की बोलियों को 5 प्रमुख उपबोलियों में विभाजित कर सकते हैं– (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी, (3) राजस्थानी हिंदी, (4) बिहारी हिंदी, (5) पहाड़ी हिंदी

1. **पश्चिमी हिंदी:**– भारतीय आर्य भाषाओं में सबसे अग्रणी है। इसका उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी की भाषागत सीमाओं का निर्धारण करते हुए डॉ. ग्रियसन ने लिखा है कि "इसके उत्तर पश्चिम में पंजाबी है, दक्षिण पश्चिम और दक्षिण में राजस्थानी है। दक्षिण–पूर्व में मराठी और पूर्व में पूर्वी हिंदी है।"

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार पश्चिमी हिंदी में पाँच बोलियाँ हैं–

खड़ी बोली, बांगरू, ब्रजभाषा, बुन्देली, कन्नौजी किन्तु कुछ भाषाविद् ने दक्खिनी हिंदी को भी पश्चिमी हिंदी में शामिल करने का आग्रह किया है। इस प्रकार पश्चिमी हिंदी में कुल छः बोलियाँ शामिल हैं।

1. **खड़ी बोली :-** भाषाशास्त्र की दृष्टि से खड़ी बोली का प्रयोग अपने शुद्धतम रूप में मेरठ, रामपुर, मुरादाबाद, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर के आस–पास किया जाता है। ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी कहा है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' कहा है। हिन्दुस्तानी, नागरी हिंदी, सरहिंदी आदि नाम खड़ी बोली के पर्यायवाची हैं।

2. **बांगरू या हरयाणवी :-** हरयाणवी को बांगरू या जादू भी कहते हैं हरयाणवी पंजाब से दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन के अनुसार बैंगन की भाँति उठी हुई भूमि को बाँगड़ नाम मिला होगा। बांगरू या हरयाणवी दिल्ली के कुछ भाग तथा हरियाणा की बोली है। इसके अन्तर्गत करनाल, जींद, हिसार, पटियाला का दक्षिणी पूर्वी भाग व रोहतक आदि क्षेत्र शामिल है। इस पर पंजाबी, राजस्थानी तथा खड़ी बोली का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

3. **दक्खिनी:-** औरंगजेब द्वारा गुलबर्गा, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर बरार के पूर्ण रूप से नष्ट कर देने के पश्चात् हैदराबाद में पुनः स्वतंत्र निजाम राज्य की स्थापना हुई। यही पर बसने वाले सैनिकों राज्य कर्मचारियों, एवं धर्म–प्रचारकों, रोजगार की तलाश में आने वाले लोगों ने जिस भाषा या बोली का प्रयोग किया उसे हिंदी या हिंदवी कहते थे। इसी बोली को दक्खिनी कहा जाता है। दक्खिनी हिंदी पर उर्दू व खड़ी बोली का प्रभाव है।

4. **ब्रजभाषा :-** ब्रज भाषा का अन्य नाम अन्तर्वेदी भी है। "आर्यों का पवित्र यज्ञ भूमि गंगा–यमुना का दोआब अन्तर्वेद कहलाता है, और इसलिए ब्रजभाषा को अन्तर्वेदी कहते हैं।" ब्रज से तात्पर्य ब्रज–प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा/बोली से है। ब्रजभाषा मथुरा के आस–पास बोली जाती है। हिंदी साहित्य के रीतिकाल में ब्रजभाषा में उच्चकोटि के साहित्य निर्मित हुए। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा की श्रेणी में रखा गया है। मध्यकाल में यह बोली सम्पूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गयी है। उत्तर प्रदेश के अलीगढ़, मथुरा, आगरा में विशुद्ध ब्रजभाषा बोली जाती है। इसके अतिरिक्त बुलन्दशहर, एटा मैनपुरी में ब्रज भाषा का प्रयोग आम बोलचाल के लिए होता है। उत्तरप्रदेश के अतिरिक्त राजस्थान के भरतपुर और धौलपुर तथा मध्यप्रदेश के मुरैना भिण्ड और ग्वालियर जिले के अधिकांश भाग ब्रजभाषा भाषी क्षेत्र में आते हैं। ब्रजभाषा साहित्य के प्रमुख कवि– सूरदास, मीरा, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, घनानंद, सेनापति भारतेन्दु और रत्नाकर आदि हैं।

5. **बुन्देली:-** बुन्देली बुन्देलखण्ड की उपभाषा है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार बुन्देली बुन्देलखण्ड की बोली है शुद्ध रूप में यह जालौन, झाँसी, हम्मीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर तथा होशंगाबाद में बोली जाती है बुन्देली साहित्य का भण्डार अपार है। अपनी विशेष साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण तथा वीर नायकों आल्हा–ऊदल, छत्रसाल और झाँसी की रानी का नाम अविस्मरणीय है। केशवदास, पद्माकरभट्ट, लालकवि, गंगाधर व्यास, जगनिक इसी प्रदेश के प्रसिद्ध कवि है। बुन्देली साहित्य पर ब्रज का अत्यधिक प्रभाव है।

6. **कन्नौजी :-** कन्नौजी कन्नौज या काव्यकुब्ज प्रदेश जो वर्तमान में फर्रूखाबाद जिले में पड़ता है, इसी के आधार पर इस क्षेत्र की बोली का नाम कन्नौजी पड़ा। कन्नौजी ब्रजभाषा से अधिक साम्यता रखती है। जिसके कारण कन्नौजी साहित्य की जो थोड़ी बहुत रचनाएँ है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। विशुद्ध कन्नौजी कानपुर, इटावा और फर्रूखाबाद में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त पीलीभीत हरदोई और शाहजहाँपुर भी कन्नौजी बोली के क्षेत्र में आते हैं। प्राचीनकाल से ही कन्नौज साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। परंतु स्वतंत्र रूप से कन्नौजी में कोई साहित्यिक रचना नहीं हुई। इस क्षेत्र में चिन्तामणि, भूषण, मतिराम आदि प्रसिद्ध कवि हुए किन्तु इनके साहित्य पर ब्रजभाषा का ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

2. पूर्वी हिंदी:- पूर्वी हिंदी के अंतर्गत तीन बोलियां आती हैं- अवधी बघेली और छत्तीसगढ़ी। पूर्वी हिंदी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। इसका विस्तार क्षेत्र उत्तर प्रदेश के अवध, मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ क्षेत्र में है। कुछ भाषाविदों ने बघेली को अवधी की ही उपबोली माना है।

अवधी अवध प्रान्त की बोली है। अवधी को बनौघी पूर्वी और बैसवाड़ी अवधी के लिए प्रयुक्त अन्य नाम हैं। अवधी बोली लखीमपुरखीरी, गोंडा, बहराइच, बाराबंकी, लखनऊ, फैजाबाद, उन्नाव, सीतापुर, प्रतापगढ़ और रायबरेली में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त जौनपुर, सुल्तानपुर मिर्जापुर के पश्चिमी भाग फतेहपुर, इलाहाबाद आदि में भी अवधी बोली का ही प्रयोग किया जाता है। अवधी बोली का प्रथम ज्ञात साहित्य मुल्ला दाऊद कृत चंदायन 1370 है। अवधी साहित्य का सर्वाधिक विकास भक्तिकाल में हुआ। अवधी साहित्य में तुलसीदास और जायसी का सबसे प्रमुख स्थान है। भक्तिकाल में सूफी कवियों में- जायसी, कुतबन, मंझन तो रामभक्ति के तुलसीदास, स्वामी अग्रदास, जानकीशरण, महाराज रघुराज सिंह प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में भी अवधी के प्रमुख कवियों में पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र (कृष्णायन) रमई काका, बलभद्र प्रसाद दीक्षित पढ़ीस, दयाशंकर दीक्षित और वंशीधर शुक्ल का स्थान अग्रणी है।

बघेली:- बघेलखण्ड में बोले जाने के कारण इस बोली का नाम बघेली पड़ा। बघेली का केन्द्र रीवा है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा और बातूराम सक्सेना बघेली को स्वतंत्र बोली न मानकर अवधी का रूप ही मानते हैं। रीवा, शहडोल, सतना, जिले में विशुद्ध बघेली बोली जाती है। जबलपुर तथा बांदा में मिश्रित रूप मे बोली जाती है। बघेली बोली पूर्व में मिर्जापुर, छोटा नागपुर बिलासपुर के पश्चिमी भाग में भी प्रयोग की जाती है। बघेली में साहित्य का सर्वथा अभाव है।

छत्तीसगढ़ी:- छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी बोली प्रमुख रूप से बोली जाती है। उड़ीसा प्रदेश के संभलपुर के निवासी छत्तीसगढ़ी को लरिया कहते है। इसलिए इसे लरिया भी कहा जाता है। बालाघाट

में इसका नाम खल्टाही भी है। सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायगढ़, रायपुर, दुर्ग, नंदगाँव, कांकेर जिलों में छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी का अपना कोई लिपि बद्ध साहित्य नहीं है।

बिहारी हिंदी :- बिहारी हिंदी के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन बोलियाँ आती हैं भोजपुरी, मैथिली और मगही। बिहारी उपभाषा का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। बिहारी हिंदी में भोजपुरी बोली का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। भोजपुरी जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक बोली जाने वाली बोली है इसका क्षेत्र विस्तार बिहार के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में भी है। बिहार के शाहाबाद, चम्पारन और सारन के साथ-साथ उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, आजमगढ़ तथा बनारस तक भोजपुरी का क्षेत्र विस्तार है। विभिन्न क्षेत्रों के अतिरिक्त विदेशों में भी भोजपुरी का बोलबाला है- मॉरीशस, फिजी और सूरीनाम ऐसे देश हैं जहाँ भोजपुरी बोली और समझी जाती है। 14 जून 2011 को मॉरीशस की संसद में भोजपुरी को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त हुआ है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के निकट है।

भोजपुरी बोली का प्रयोग सन्त कवियों में गोरखनाथ, कबीरदास और दरिया साहेब ने किया है और आधुनिक काल में भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी साहित्य मैं महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मगही का केन्द्र गया और पटना है। मगही का आधुनिक साहित्य बहुत समृद्ध है। मैथिली एक स्वतन्त्र भाषा है जो संस्कृत के करीब होने के कारण हिंदी से मिलती-जुलती है, परन्तु मैथिली बांगला के अत्यधिक निकट है। मैथिली दरभंगा के आस-पास प्रचलित है। मैथिली में विद्यापति के पद प्रसिद्ध हैं। मैथिली भाषा भारत और नेपाल के संविधान में राजभाषा के रूप में दर्ज है। नेपाल में दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा मैथिली ही है। मैथिली बोली का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने वर्णरत्नाकर नाम रचना में किया किन्तु इस बोली को प्रसिद्धि विद्यापति ने दिलायी। मैथिली साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान हेतु इन्हें मैथिल कोकिल की संज्ञा से विभूषित किया गया है।

राजस्थानी:- राजस्थानी राजस्थान के राजपूताने के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है तो दूसरी ओर गुजराती से है। पुरानी राजस्थानी को डिंगल भी कहते है, जिसमें चारणों का लिखा हिंदी साहित्य का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परम्परा है। राजस्थानी की चार प्रमुख बोलियाँ हैं- मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। हिंदी साहित्य में आदिकालीन रासो परम्परा के सारे साहित्य राजस्थानी के अन्तर्गत ही आते हैं।

पहाड़ी हिंदी:- पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती है। इसका प्रसार उत्तराखण्ड, हिमांचल और शिमला से लेकर नेपाल तक है। पहाड़ी उपभाषा के दो रूप हैं- गढ़वाली और कुमाउँनी। इसमें साहित्य नहीं मिलता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस तरह हिंदी की समस्त बोलियां कहीं न कहीं भिन्नता रखते हुए भी आपस में एक–दूसरे से अन्तर सम्बन्धित हैं। भौगोलिक और व्याकरणिक दृष्टि से भिन्नता हुए भी एक बोली बोलने वाला दूसरी बोली को आसानी से समझ सकता है।

जैसे– क्रिया के आधार पर अन्तरसम्बध

खड़ी बोली	–	श्याम बाजार गया।
बांगरू	–	श्याम बाजार गिया।
दक्खिनी	–	श्याम बाजार गया (खड़ी बोली)।
ब्रजभाषा	–	श्याम बजारै गा।
अवधी	–	श्याम बजारे गा।
भोजपुरी	–	श्याम बजारे गयल।
छत्तीसगढ़	–	श्याम बजारे गे।

उपर्युक्त उदाहरणों में हमने देखा कि किस प्रकार बोलियों की क्रियाओं में अन्तरसम्बध है। ओकार बहुला वर्ग में– ब्रजभाषा, बुन्देली, कन्नौजी, मारवाड़ी, कुमाउँनी, गढ़वाली, मालवी आते हैं जबकि कौरवी, दक्खिनी अकार बहुला बोली हैं जिसे हम निम्न उदाहरणों में देख सकते हैं–

खड़ी बोली	–	मोहन ने कहा कि मैं जाऊँगा। (अकार बहुला)
ब्रजभाषा	–	मोहन के कहो कि मैं जइहौं। (ओकार बहुला)

लिंग के आधार पर अन्तरसंबंध

		पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
खड़ी बोली	-	वह आया	वह आयी
बांगरू	-	वोह आया	वाह आयी
दक्खिनी	-	बु आयौ	या आई
ब्रजभाषा	-	ऊ आय	ऊ आय
अवधी	-	ए आइस	इ आइस

बुन्देली में अपने लिए उत्तम पुरूष बहुवचन सर्वनाम में अपन का विशिष्ट प्रयोग होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी की समस्त बोलियाँ आपस में कहीं न कहीं संबंध अवश्य रखती हैं।

शिक्षा में आईसीटी और आईसीटी का महत्व

रोशन पांडेय
शोधार्थी
शिक्षा विभाग, लॉर्ड्स विश्वविद्यालय, चिकानी, अलवर (राज)

सार - *वैश्वीकरण के बाद से ही पूरी दुनिया एक 'विश्व ग्राम' में तबदील हो चुकी है जिसमें सूचना के आदान-प्रदान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्येक व्यक्ति कई चीजों के बारे में सूचनाएं हासिल करना चाहता है। जैसे किसी देश में होने वाली घटनाओं की सूचना जानने के लिए किसी अन्य देश के लोग काफी उत्सुक होते हैं। सूचनाओं के आदान-प्रदान को सुलभ बनाने का काम ICT ने किया है। Information and Communication Technology का उपयोग समय के साथ विकसित हुआ है और समय के साथ तेजी से बढ़ रहा है। चूंकि सूचना प्रौद्योगिकी और संचार एक महत्वपूर्ण पहलू बन गया है, इसलिए विशेष रूप से व्यवसायों और संगठनों में ICT उत्पाद और सेवाओं का उपयोग तेजी से बढ़ा है। इन सूचना और संचार उपकरणों को स्कूलों में व्यापक रूप से सूचना बनाने, संग्रहीत करने, प्रसारित करने या संचार करने और प्रबंधित करने के लिए उपयोग किया जाता है।*

कीवर्ड - सूचना प्रौद्योगिकी और संचार, आईसीटी, आईटी

1. प्रस्तावना

Information Technology (IT) सूचनाओं को प्राप्त करने, सूचनाओं का संग्रहण करने, सूचनाओं का आदान प्रदान करने तथा इन कार्यों में कंप्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के प्रयोग से संबंधित हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर आधारित सूचना प्रणाली को कहा जाता है। लेकिन वर्तमान समय में अब इलेक्ट्रॉनिक संचार भी सूचना प्रौद्योगिकी का एक अहम हिस्सा बन चुका है। इस वजह से इन सभी को सम्मिलित रूप से ICT यानी कि "सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी" के नाम से जाना जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में Electronic माध्यमों से सूचनाओं का संप्रेक्षण संग्रहण आदान-प्रदान आदि को सम्मिलित किया जाता है।[1]

यानी कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से संबंधित है जिसके जरिए सूचनाओं को बनाने, संग्रहित करने, भेजने और आदान-प्रदान करने का काम किया जाता है। यह संदेश को

अधिक सुविधाजनक, उपयोग में आसान तथा समझने में आसान बनाता है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी के लिए Internet, Computer, Radio, Television, Mobile Phone आदि का इस्तेमाल किया जाता है। यह संसाधन हमें सूचनाओं का बनाने व उनका आदान–प्रदान करने में मदद करते हैं।

सूचना और संचार की प्रौद्योगिकी या सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, जिसे आम तौर पर आईसीटी (ICT) कहा जाता है, का प्रयोग अक्सर सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है लेकिन यह आम तौर पर अधिक सामान्य शब्दावली है, जो आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी में दूरसंचार (टेलीफोन लाईन एवं वायरलेस संकेतों) की भूमिका पर जोर देती है। आईसीटी में वे सभी साधन शामिल होते हैं जिनका प्रयोग कंप्यूटर एवं नेटवर्क हार्डवेयर दोनों और साथ ही साथ आवश्यक सॉफ्टवेयर सहित सूचना एवं सहायता संचार का संचालन करने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में, आईसीटी (ICT) में आईटी (IT) के साथ–साथ दूरभाष संचार, प्रसारण मीडिया और सभी प्रकार के ऑडियो और वीडियो प्रक्रमण एवं प्रेषण शामिल होता है। इस अभिव्यक्ति का सबसे पहला प्रयोग 1997, में डेनिस स्टीवेंसन द्वारा ब्रिटेन की सरकार को भेजी गई एक रिपोर्ट में किया गया था एवं सन 2000 में ब्रिटेन के नये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संबंधी दस्तावेजों द्वारा प्रचारित इसका प्रचार किया गया।

अब आईसीटी (ICT) शब्द का प्रयोग टेलीफोन नेटवर्कों का कंप्यूटर नेटवर्कों के साथ एक एकल केबल या लिंक प्रणाली के माध्यम से संयुग्मन (अभिसरण) करने के लिए भी किया जाता है। टेलीफोन नेटवर्कों का कंप्यूटर नेटवर्क प्रणाली के साथ संयुग्मन करने के व्यापक आर्थिक लाभ (टेलीफोन नेटवर्क की समाप्ति के कारण भारी लागत बचत) हैं। वीओआईपी (VOIP) देखें. बदले में इसने संगठनों के विकास को प्रेरित किया है जिसमें उनके नाम में आईसीटी शब्द का प्रयोग दो नेटवर्क प्रणालियों के संयुग्मन करने की प्रक्रिया में उनकी विशेषज्ञता को सूचित करने के लिए किया जाता है।

2. शिक्षा में आईसीटी

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के महत्व को मान्यता प्रदान करते हुए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने मिशन दस्तावेजों के अनुसार आईसीए का प्रयोग शिक्षा में एक उपकरण की भांति किया है जिसका उद्देश्य उच्च शिक्षा में वर्तमान नामांकन की दर जो 15 प्रतिशत है, को 11वीं योजना की समाप्ति तक बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना है।

मंत्रालय ने 'सशक्त' नामक वेब पोर्टल भी प्रारंभ किया है, जो 'वन स्टॉप शिक्षा पोर्टल' है। उच्च गुणवत्ता वाली ई–विषय–वस्तु सभी विषय क्षेत्रों और विषयों पर 'सशक्त' में अपलोड की जाएगी। अनेक परियोजनाएं समाप्ति की अवस्था पर हैं तथा इससे भारत में शिक्षण और अधिगम की व्यवस्था

में आमूल परिवर्तन आने की संभावना है।

इस समय विभिन्न कक्षाओं, बौद्धिक समक्षताओं तथा ई–अधिगम में शोध के लिए उपयुक्त "शिक्षाशास्त्र प्रवृत्तियों का विकास" परियोजना, आईआईटी, खड़गपुर द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। समस्त आईआईटी तथा अनेक एनआईटी के संकाय द्वारा इस पाठ्यचर्या विकास योजना में प्रतिभागिता की जा रही है।

राष्ट्रीय शिक्षा मिशन ने सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के माध्यम से अपने तत्वावधान में वर्चुअल लैबों, ओपन सोर्स और एक्सेस टूलों, वर्चुअल कांफ्रेस टूलों, टॉक टू टीचर कार्यक्रमों तथा नॉन–इन्वेसिव ब्लड ग्लूकोमीटर का सृजन किया है तथा उत्प्रेरित प्रयोगशाला प्रयोगों के लिए एक डाई इलेक्ट्रिक फ्रीक्वेंसी शिफ्ट एप्लीकेशन का विकास किया गया है जो लो कॉस्ट आस्किलेर्ट के लिए है।

राष्ट्रीय शिक्षा मिशन में सूचना और संचार प्रौद्योगकी (आईसीटी) के माध्यम से किसी भी समय कहीं भी माध्यम से उच्च शिक्षा संस्थाओं में सभी विद्यार्थियों के लिए इंटरनेट/इंटरानेट पर उच्च गुणवत्ता वाले वैयिक्तक और सहसक्रिय ज्ञान माड्यूलों को उपलब्ध कराते हुए आईसीटी की क्षमता का उत्थान करने के लिए एक केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना की परिकल्पना की गई थी। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि इससे ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान उच्चतम शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) में 5 प्रतिशत की वृद्धि करने तथा उच्च शिक्षा में पहुंच और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के रूप में पर्याप्त हस्तक्षेप किया जा सकेगा।

मिशन के दो महत्वपूर्ण अवयव हैं अर्थात (क) विषय वस्तु का सृजन तथा (ख) संस्थाओं और सीखने वालों के लिए पहुंच उपकरणों हेतु प्रावधान। इसका आशय डिजिटल अंतर को कम करना है अर्थात् उच्च शिक्षा क्षेत्र में शहरी और ग्रामीण शिक्षकों–छात्रों की शिक्षा और अधिगम के प्रयोजनार्थ कंप्ययूटिंग उपकरणों के प्रयोग के कौशलों में अंतर को कम किया तथा उन्हें सशक्त बनाया जो अब तक डिजिटल क्रांति से अछूते रहे हैं और ज्ञान अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में शामिल होने में समर्थ नहीं रहे हैं। यह ई–शिक्षण के लिए उपयुक्त शिक्षाशास्त्र पर ध्यान केन्द्रित करने, वर्चुअल प्रयोगशाला के माध्यम से प्रयोगों को निष्पादित करने, ऑनलाइन टेस्टिंग और प्रमाणन की सुविधा प्रदान करके शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन और उनसे परामर्श करने के लिए शिक्षकों की ऑनलाइन उपलब्धता कराके, उपलब्ध शिक्षा उपग्रह (एडुसैट) तथा डायरेक्ट–टु–होम (डीटीएच) पद्धतियों का प्रभावशाली प्रयोग करने के लिए शिक्षकों को सुदृढ़ता प्रदान करके ई–शिक्षण के उपयुक्त शिक्षाशास्त्र पर ध्यान केन्द्रित करने का आशय रखता है।

दूसरी ओर, मिशन ललित समूहों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली ई–विषय–वस्तु का निर्माण करेगा तथा साथ ही यह देश में 18000 से अधिक कॉलेजों की कंप्यूटिंग अवंसरचना और संयोजनता में

साथ-साथ विस्तार करेगा जिसमें राष्ट्रीय महत्व के लगभग 400 विश्वविद्यालयों/मानित विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं का प्रत्येक विभाग शामिल है। सहयोगी समूह सहायक विषय-वस्तु का विकास विषय-वस्तु के पुनरीक्षण के लिए उत्तरदायी विषय-वस्तु परामर्श समिति के पर्यवेक्षण के अंतर्गत विकिपीडिया जैसे सहयोगी प्लेटफार्म का प्रयोग करेगा। पारस्परिक सहयोग तथा समस्या निवारण दृष्टिकोण का निवारण 'शिक्षक से बात करें' खंड के माध्यम से किया जाएगा।

भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी और उद्योग 2009 के आंकड़ों के अनुसार देश की जीडीपी और निर्यात आय में 5.9 प्रतिशत का योगदान करता है जबकि यह अपने तृतीयक क्षेत्र के बड़ी संख्या में कार्यबल को रोजगार भी प्रदान करता है। इस क्षेत्र में प्रत्यक्षत: और अप्रत्यक्षत: 2.3 मिलियन से अधिक लोग नियोजित हैं जो इसे भारत का सर्वाधिक बड़ा रोजगार सृजक बनाते हैं तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में शामिल करते हैं।

मार्च, 2009 में भारत में आउटसोर्सिंग प्रचालनों से वार्षिक राजस्व 60 बिलियन यूएस डॉलर था तथा इसके 2020 तक बढ़कर 225 बिलियन यूएस डॉलर होने की संभावना है। सबसे प्रधान आईटी हब आईटी राजधानी बेंगलुरु है। अन्य उभरते हुई आईटी गंतव्य चेन्नई, हैदराबाद, पुणे, एनसीआर और कोलकाता हैं। भारत से तकनीकी दृष्टि से सक्षम अप्रवासियों 1950 के दशक से ही पश्चिमी विश्व में रोजगार की तलाश कर रहे हैं क्योंकि भारत की शिक्षा प्रणाली ने इतनी अधिक संख्या में इंजीनियर उत्पादित कर दिए हैं जिन्हें उद्योग क्षेत्र खपा पाने में समर्थ नहीं है। सूचना युग में निरंतर बढ़ते हुए भारत के महत्व के कारण यह अमेरिका और साथ ही यूरोपीय संघ के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करने में समर्थ रहा है।

प्रत्येक वर्ष भारत लगभग 800,000 इंजीनियर देश में उत्पादित करता है जिनमें से 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के पास तकनीकी सक्षमता और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान दोनों ही होता है जबकि भारत की 10 प्रतिशत जनसंख्या ही अंग्रेजी बोल सकती है। भारत ने बड़ी संख्या में आउटसोर्सिंग कंपनियां तैयार की हैं, जो इंटरनेट अथवा टेलीफोन कनेक्शनों के माध्यम से उपभोक्ता को सहायता प्रदान करने में विशेषज्ञता प्राप्त हैं।

वर्ष 2009 तक, भारत के पास 37,160,000 टेलीफोन लाइनें प्रयोग में थी तथा कुल 506,040,000 मोबाइल फोन कनेक्शन थे, कुल 81,000,000 इंटरनेट प्रयोक्ता थे जो देश की जनसंख्या का 7.0 प्रतिशत था और देश में 7,570,000 लोगों की ब्रॉडबैंड इंटरनेट प्रयोक्ताओं के संदर्भ में भारत को विश्व में 12वां विशालतम देश बना दिया था। नवम्बर 2009 तक कुल फिक्सड-लाइनों और वायरलैस सब्सक्राइबरों की कुल संख्या 543.20 मिलियन तक पहुंच चुकी थी।

भारतीय दूरसंचार उद्योग जिसमें लगभग 525 मिलियन मोबाइल फोन हैं (दिसम्बर, 2009) विश्व में तीसरा विशालतम दूरसंचार नेटवर्क है तथा वायरलैस कनेक्शनों की संख्या के मामले में यह द्वितीय विशालतम देश है। 'भारत दूरसंचार उद्योग विश्व के तेजी से विकसित होते उद्योगों में से एक है तथा यह अनुमान लगाया गया है कि हमारे पास 2015 तक –एक बिलियन से अधिक' प्रयोक्ता होंगे। अनेक अग्रणी वैश्विक परामर्शकों का अनुमान यह है कि भारत का दूरसंचार नेटवर्क अगले 10 वर्षों में चीन के नेटवर्क को पीछे छोड़ देगा। पिछले एक दशक से दूरसंचार क्रियाकलापों ने भारत में अत्यंत तेजी पकड़ी है। इस अवसंरचना में वृद्धि करने के लिए सरकारी और गैर–सरकारी मंचों द्वारा अनेक प्रयास किए गए हैं। विचार यह है कि आधुनिक दूरसंचार प्रौद्योगिकियां भारत की सांस्कृतिक रूप से विविधतापूर्ण समाज के सभी क्षेत्रों को सेवा प्रदान करे तथा इसे प्रौद्योगिकी रूप से समर्थ लोगों के देश के रूप में रूपांतरित करें।

3. आईसीटी का महत्व

शिक्षा के क्षेत्र में ICT के उपयोग तीव्रता से सीखने एवं सिखाने की प्रक्रियाओं में सुधार किया है। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ ICT का उपयोग न किया जाता हो। अतः सूचना एवं सम्प्रेषण के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **सीखने के संसाधनों की विविधता का उपयोग**– ICT शिक्षण कौशल और सीखने की क्षमता को बढ़ाने के लिए संसाधनों के निर्माण में बहुत मदद करता है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक की सहायता से अब श्रव्य–दृश्य माध्यम से शिक्षा प्रदान करना आसान हो गया है और विद्यार्थियो को कम्प्यूटर प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर छात्रों को सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के माध्यम से अनुदेशन प्रदान किया जा सकता है।

2. **जानकारी के लिए तात्कालिकता**– सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने नवीनतम विधियों के द्वारा ज्ञान प्रदान करने की गति को बहुत तेज किया है, अतः कम्प्यूटर एवं नेटवर्क के माध्यम से कहीं पर किसी भी समय शिक्षण किया जा सकता है। तात्कालिक जानकारी के आधार पर आधुनिक युग में शिक्षण प्रदान करके नवयुवकों को परम्परागत तकनीकों की सहायता से आने वाले परिवर्तनों के लिए तैयार किया जा सकता है। जबकि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का समुचित प्रयोग इस दिशा में सहायक सिद्ध हो रहा है।

3. **व्यक्तिगत विकास के लिए उपयोगी**– सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक के माध्यम से विद्यार्थी नवीन सूचनाओं का प्रयोग करके अपना व्यक्तिगत विकास कर सकते हैं और अपनी आवश्यकता, गति एवं रुचि के अनुसार स्व– अनुदेशन प्राप्त कर सकते हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकों से विद्यार्थी

में समस्या समाधान योग्यता, निर्णय क्षमता का भी विकास होता है और विद्यार्थियों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन भी लाया जा सकता है।

4. **शिक्षकों के लिए उपयोगी**– उपर्युक्त शिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाएं ज्ञान और आँकड़ों की आवश्यकता होती है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षकों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है। इन्हें उचित प्रकार से प्राप्त करने में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी शिक्षक की सहायता करती है। शिक्षक अपने विद्यार्थियों को ज्ञान और सूचना के स्रोतों की जानकारी देकर अपने कार्यभार को कम कर देते हैं तथा प्रकरण का अभ्यास कराने के लिए भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

5. **विद्यार्थियों के लिए उपयोगी**– सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी से विद्यार्थी अपने सीमित ज्ञान का विस्तार कर सकते हैं। वे न केवल सूचनाओं को इकट्ठा करके सही समय पर उसका उपयोग कर सकते हैं। अपितु विद्यार्थियों में समस्या समाधान व निर्णय क्षमता का भी विकास होता है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी विद्यार्थियों को उनको क्षमता के अनुसार सीखने के सिद्धान्त का ज्ञान कराती है। इससे विद्यार्थियों के रचनात्मक एवं सृजनात्मक चिन्तन का विकास होता है।

6. **शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग का ज्ञान**– शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग की प्रक्रिया शिक्षकों की व्यावसायिक उन्नति का सूचक है। वर्तमान समय में प्रत्येक शिक्षक अपनी शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के माध्यम से शिक्षण अधिगम सामग्री के निर्माण की उचित विधियों एवं प्रयोग की जाने वाली सावधानियों का ज्ञान प्राप्त करता है जिससे कि शिक्षक का शिक्षण कुशल, प्रभावशाली व उपयोगी बन सके।

7. **शिक्षक प्रशिक्षण में सहायक**– शिक्षकों के विकास के लिए एवं शिक्षण को कुशल एवं प्रभावपूर्ण बनाने में सूचना सम्प्रेषण बहुत सहायक है। इसके लिए शिक्षण अभ्यास प्रतिमानों की रचना, सूक्ष्म शिक्षण, अनुकरणीय शिक्षण एवं प्रणाली उपागम का उपयोग किया जाता है। शिक्षण कौशलों के विकास में भी इसका उपयोग किया जाता है।

8. **शैक्षिक अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए उपयोगी**– सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के द्वारा प्राप्त सूचना एवं आँकड़ो से शोधकार्य आसानी से हो सकता है। शोधार्थी को अपने प्रकरण से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के शोध कम्प्यूटर व नेटवर्क के माध्यम से देखने को मिल सकते हैं जिससे उसे अपने कार्य को व्यवस्थित व क्रमबद्ध करने में आसानी हो जाती है।

9. **परामर्श व मार्गदर्शन प्रदान करने वालों के लिए उपयोगी**– सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी को सहायता से रिकॉर्ड की हुई सामग्री के द्वारा विद्यार्थियों की रुचि व उनके मानसिक स्तर के बारे में जानकर उन्हें उचित मार्गदर्शन दिया जा सकता है। निर्देशन व परामर्श चाहे विद्यालय में हो या

विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न प्रकार की रोजगार सम्बन्धी सूचना प्रदान करने में सूचना एवं सम्प्रेषण का विशेष योगदान है।

निष्कर्ष

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology) एक व्यापक क्षेत्र है, जिसमें सूचना के संचार के लिये हर तरह की प्रौद्योगिकी समाहित है। यह वो प्रौद्योगिकी है जो कि सूचना के संचालन (रचना, भंडारण और उपयोग) की योग्यता रखता है तथा संचार के विभिन्न माध्यमों (रेडियो, टेलिविजन, सेलफोन, कम्प्यूटर, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर, विभिन्न सेवाओं और अनुप्रयोगों) से सूचना के प्रसारण की सुविधा प्रदान करता है। कृषि, स्वास्थ्य, शासन प्रबन्ध और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में आई.सी.टी. के विकास का प्रभाव है। यह लेख उच्च शिक्षा में आई.सी.टी. की भूमि को केंद्रित कर रहा है। शैक्षिक अवसरों को विस्तृत करने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास एवं शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये आई.सी.टी. एक प्रभावशाली साधन है।

संदर्भ सूची

1. अमृत पाल कौर।, प्री-सर्विस साइंस टीचर्स एटिट्यूड टू यूज द सिलेक्टेड आईसीटी टूल्स इन टीचिंग: एन एक्सप्लोरेटरी स्टडी, एडवांसिंग एजुकेशन, http%//www-naace-co-uk/1718, 2011।
2. बराक, मिरी।, सेवा पूर्व एसटीईएम शिक्षकों के बीच आईसीवाई-एन्हांस्ड लर्निंग के बारे में दृष्टिकोण और धारणाओं के बीच अंतर को बंद करना, विज्ञान शिक्षा और प्रौद्योगिकी जर्नल, 23(1), 2014,1-14।
3. ब्यूचौम्प, गैरी।, प्राथमिक विद्यालय में अन्तरक्रियाशीलता और आईसीटी: आईसीटी, प्रौद्योगिकी, शिक्षाशास्त्र और शिक्षा के साथ और बिना शिक्षार्थी बातचीत की श्रेणियां, 20(2), 2011, 175-190।
4. डन, आर., लर्निंग स्टाइल: स्टेट आफॅ द सीन, थ्योरी इनटू प्रैक्टिस, 23, 1983,10-19।
5. एडिसन शमोएल।, विक्टोरियन सेकेंडरी स्कूल में "ब्लैकबोर्ड" कंप्यूटर प्रोग्राम को अपनाने में शिक्षकों की धारणा और अनुभव: एक केस स्टडी, डॉक्टरेट थीसिस, स्कूल आफॅ एजुकेशन, विक्टोरिया यूनिवर्सिटी, विक्टोरिया, ऑस्ट्रेलिया, 2005।
6. इंगलबी, इवान।, इंग्लैंड में आगे और उच्च शिक्षा में आईसीटी के चयनित छात्र और ट्यूटर धारणाएं, आगे और उच्च शिक्षा के जर्नल, 38(3), 2014,287-304।
7. जेनकिंस, जेएम, व्यक्तिगत छात्र सीखने की शैलियों को पढ़ाना, प्रशासक,6(1), 1982, 10-12.
8. जिंग लेई, डिजिटल नेटिव्स अस प्री सर्विस टीचर्स: व्हाट टेक्नोलॉजी प्रिपरेशन
9. लार्ज, आई., स्कूलिंग मेक अ डिफरेंस, टीचर्स कॉलेज रिकॉर्ड, वॉल्यूम 46(8),05,1945,483 - 942।

10. ली बिह नी, इतिहास के शिक्षण और सीखने में आईसीटी का उपयोग, कंप्यूटर नेटवर्क और वायरलेस संचार के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल (आईजेसीएनडब्ल्यूसी), 2(4), 2012, 428-433।

11. लवलेस, एएम, शिक्षा और सूचना प्रौद्योगिकी, 8 (4), 2003, 313-326.

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : समतामूलक और समावेशी शिक्षा

डॉ० लालमणि प्रजापति
असि० प्रोफेसर, गाँधी स्मारक पी० जी० कॉलेज, समोधपुर, जौनपुर, उ०प्र०

सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा समतामूलक एवं समावेशी शिक्षा ऐसे लक्ष्यों के साथ आगे बढ़ती है जिससे भारत देश के किसी भी बच्चे के सीखने और आगे बढ़ने के अवसरों में उसकी जन्म या पृष्ठभूमि से संबंधित परिस्थितियां बाधक ना हो, इस प्रकार यह नित हमारे देश के आने वाले शैक्षिक भविष्य के लिए सुधारात्मक एवं समन्वयात्मक नीति सिद्ध होगी।

प्रस्तावना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,को भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा मंजूरी दी गई। इस नीति द्वारा विद्यालय और उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में सुधार के रास्ते खुल गये है। यह नीति 34 वर्ष पुरानी नई शिक्षा नीति 1986 को प्रतिस्थापित की है। इस नीति में भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास के एजेंडे को अपनाया गया है जिसके अनुसार विश्व में 2030 तक 'सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरो को बढ़ावा दिए जाने के लक्ष्य को रखा गया है। ताकि सतत विकास के लिए 2030 एजेंडे के सभी महत्वपूर्ण उद्देश्यो और लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके।

शिक्षा में विषय वस्तु को बढ़ाने की जगह जोर इस बात पर देने की आवश्यकता है कि बच्चे समस्या–समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से विचार करना सीखें, विविध विषयों के बीच अंतर्सबंधों को जाने और कुछ नया विचार करें। इसलिए आज आवश्यकता है कि शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी केंद्रित हो, जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के आधार पर संचालित हो, लचीली हो और समग्रता समन्वित रूप से देखने–समझने में सक्षम बनाने वाली और रुचि पूर्ण हो ताकि शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास हो सके।

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्रदान करता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपना विकास कर समाज में सक्रिय भागीदारी करके सहयोग करता है। इसलिए शिक्षा की पहुंच सभी बालकों तक हो, इसके लिए समावेशी संप्रत्यय विकसित किया गया। जिनका मुख्य उद्देश्य सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार के बालकों, उनकी आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान करने से है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार समावेशी शिक्षा में सीखने वाले, बालक हो अथवा युवा, चाहे अशक्त हो या नहीं, सामान्य विद्यालय, या पूर्ण व्यवस्था विद्यालय, एवं समुदायिक शिक्षा केंद्रों में उपयुक्त सहयोगी सेवाओं के साथ आपस में मिलजुल कर सीखने में समर्थ हो। असमर्थ बालकों के लिए विशेष विद्यालयों की स्थापना की शुरुआत 18 वीं शताब्दी के मध्य में हुई थी, लेकिन जब से मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया है, तो यह महसूस किया गया कि हमें इन विशिष्ट बालकों को अलग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक व शिक्षा की दृष्टि से उचित नहीं है। क्रुकशंक (Cruk shank) के अनुसार – "विशिष्ट बालकों की शिक्षा संपूर्ण शिक्षा का हिस्सा है।"

अमेरिका में, अमेरिकन कांग्रेस ने सन् 1975 में प्रत्येक अक्षम बच्चों को शिक्षा का एक कानून पास किया था जिसका उद्देश्य अक्षम बालकों को देश की मुख्य धारा से जोड़ना था। भारत में भी समावेशी शिक्षा अमेरिका के मुख्य धारा आंदोलन का ही परिणाम है। अपंग बालकों को विशेष शिक्षा कि नहीं, अपितु समावेशी शिक्षा व मुख्य धारा में लाने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय और लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करती है। और एक समावेशी समाज की स्थापना करती है। अनुच्छेद 14 में यह उपबंधित करता है कि भारत– राज्य– क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों में समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, समानता, वहनीय शिक्षा और उत्तरदायित्व जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान देता है। छात्रों को आवश्यक कौशलों एवं ज्ञान से परिपूर्ण करना और विज्ञान, तकनीकी, शैक्षिक क्षेत्र और औद्योगिकी में कुशल लोगों की कमी को दूर करते हुए देश को ज्ञान आधारित सुपर पावर के रूप में स्थापित करना है जिससे छात्रों में रचनात्मक चिंतन, तार्किक निर्णय और नवाचार की भावना को प्रोत्साहित किया जा सके। भाषाई बाधाओं को दूर करने, दिव्यांग छात्रों के लिए शिक्षा को सुगम बनाने आदि के लिए तकनीकी के प्रयोग को बढ़ावा देने पर बल देना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत वर्ष 2030 तक सकल नामांकन अनुपात (GER) को 100% लाने का लक्ष्य रखा गया है। केंद्र/राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा के क्षेत्र पर जी. डी. पी. के 6% हिस्से के सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है और भारत सरकार नया राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क तैयार करके जिसमें ई. सी. सी. ई. स्कूल टीचर और प्रौढ़ शिक्षा को जोड़ा गया है। ई– लर्निंग पर जोर देकर

पाठ्य पुस्तकों पर निर्भरता को कम किया जाना सुनिश्चित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,

यह शिक्षा नीति प्रगतिशील, समृद्धि, सृजनशील एवं नैतिक मूल्यों से पूर्ण ऐसे भारत की संकल्पना कर रही है जो अपने गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने का स्वप्न दिखाती है। यह नीति स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है जिसमें बुनियादी तौर पर परिवर्तन किए गए हैं। इस नीति के तहत शैक्षिक क्षेत्र को तकनीकी से जोड़ा गया है जिसमें सभी स्कूलों में अधिक से अधिक डिजिटल उपकरण दिए जाने का प्रस्ताव है। इस नीति में सभी प्रकार की शैक्षिक विषय- वस्तु को प्रमुखतः इस क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषा में भी ट्रांसलेट किया जाएगा, जिससे शैक्षिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा को बढ़ावा मिल सके। इसमें परीक्षण इंटर्नशिप की भी व्यवस्था होगी। यह शिक्षा नीति 10+2+3 को बदलकर 5+3+3+4 के पैटर्न को अपनाते हुए स्कूली शिक्षा को 15 साल कर दिया गया है। इस नीति के अंदर बच्चों को पढ़ाई में विभिन्न प्रकार के विकल्प दिए जाएंगे। दसवीं कक्षा में अन्य विकल्पों को भी रखा जाएगा जिसमें छात्र कोई स्ट्रीम न चुनकर अपनी इच्छा अनुसार विषयों को चुन सकेगा। विद्यालयों में शकल अनुपात बढ़ाने के लिए दूरस्थ व मुक्त शिक्षा का विस्तार किया गया है। मूल्यांकन मानदंड को योगात्मक मूल्यांकन में बदलकर औपचारिक व नियमित मूल्यांकन किया जाएगा। मूल्यांकन के उद्देश्य के लिए एक नया राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र स्थापित होगा।

समावेशी शिक्षाः- माइकल एफ. जियान ग्रैको के अनुसार- समावेशी शिक्षा से अभिप्राय उन मूल्यों सिद्धांतों और प्रथाओं के समूह से है जो सभी विद्यार्थियों को चाहे वे विशिष्ट हैं अथवा नहीं प्रभावकारी और सार्थक शिक्षा देने पर बल देते हैं।

स्टीफन एवं ब्लैकहर्ट के अनुसार- शिक्षा के मुख्यधारा का अर्थ बालकों की सामान्य कक्षाओं में शिक्षण व्यवस्था करना है या समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानवीकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।

स्टेनबैक एवं स्टेनबैक के अनुसार- समावेशी विद्यालय अथवा पर्यावरण से अभिप्राय ऐसे स्थान से है जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपने को सदस्य मानता है जिसको अपना समझा जाता है जो अपने साथियों और विद्यालय कुटुंब के प्रत्येक सदस्य की सहायता करता है और अपनी शिक्षा प्राप्ति संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उनसे सहायता प्राप्त करता है।

- **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: समावेशी शिक्षा**

समावेशी शिक्षा के मौलिक सिद्धांत

1. प्रत्येक विद्यार्थी की उत्कृष्ट क्षमताओं को पहचानने और उन्हें बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों और अभिभावकों को संवेदनशील बनाया जाएगा।
2. शिक्षा को समवर्ती सूची का विषय मानते हुए सभी पाठ्यक्रम शिक्षण शास्त्र और नीतियों में विविध ता व स्थानीय संदर्भ के लिए सम्मान।
3. सभी शैक्षणिक निर्णय में पूर्ण समानता और समावेश पर फोकस ताकि शिक्षा प्रणाली में सभी छात्रों का विकास सुनिश्चित हो।

अल्पसंख्यक और SEDG से संबंधित बच्चों को शिक्षा के समान अवसर

1. शिक्षा को अनुसूचित जातियों के बच्चों तक पहुंचाना, उनकी भागीदारी बढ़ाना और सीखने के अंतराल को कम करना और अन्य पिछड़ा वर्ग पर विशेष ध्यान केंद्रित करना।
2. आदिवासी समुदायों के बच्चों को लाभान्वित करने के लिए विशेष तंत्र की शुरुआत होगी।
3. शैक्षिक रूप से विकसित समुदायों से संबंधित बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा।
4. दिव्यांग बच्चों को भी अन्य बच्चों की तरह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने के लिए सक्षम तंत्र बनाया जाएगा।

विशेष शिक्षा क्षेत्र- समावेशी शिक्षा के लिए समग्र दृष्टिकोण

1. सामाजिक व आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्ग (SEDG) के अधिक आबादी वाले क्षेत्रों में विशेष शिक्षा केंद्रों का
2. बच्चों को शिक्षक परिदृश्य को बदलने के लिए शिक्षा क्षेत्र के सभी योजनाओं व नीतियों को पूर्ण रूप से प्रयोग किया जाएगा।
3. SEDG से संबंधित बच्चों और विशेष रूप से छात्राओं की शिक्षा के लिए विषमता समाप्त करने हेतु लक्षित नीतियां और योजनाएं तैयार की जाएगी।

SEDG व अल्पसंख्यक बच्चों के लिए अधिक निधि व विकसित बुनियादी ढांचा

1. छात्राओं तथा ट्रान्सजेन्डर बच्चों की शिक्षा हेतु जेन्डर इन्क्लूजन निधि फन्ड का प्रावधान किया जाएगा।
2. सामाजिक व आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्ग (SEDG) के बच्चों की समस्याओं के समाधान हेतु समावेशन निधि योजनाओं को विकसित किया जाएगा।
3. स्कूलों में विशेष रूप से (SEDG) वर्ग के विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क बोर्डिंग सुविधाओं का निर्माण किया जाएगा।

RPWD अधिनियम 2016 के प्रावधान बाधा मुक्त शिक्षा सुनिश्चित

1. सभी दिव्यांग बच्चों के लिए बाध मुक्त शिक्षा सुनिश्चित किया जाएगा।
2. सहायक उपकरण के साथ साथ पर्याप्त उपयुक्त भाषा में पठन-पाठन सामग्री सुलभ कराई जाएगी।
3. दिव्यांग बच्चे नियमित या विशेष स्कूली शिक्षा या गृह आधारित शिक्षा के विकल्प का चयन कर सकते हैं।
4. गंभीर या एक से अधिक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के पुनर्वास और शिक्षा से संबंधित आवश्यकता को पूरा करने के लिए संसाधन केंद्र और विशेष शिक्षक द्वारा मदद दी जाएगी।

बेहतर शिक्षण परिणामों के लिए शिक्षक शिक्षा का उन्नयन

1. **B.Ed कार्यक्रमों में शिक्षण**- शास्त्र में अत्याधुनिक तकनीकों में प्रशिक्षण दिया जाएगा, जिसमें बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान दिव्यांग बच्चों को पढ़ाना शामिल है।
2. **B.Ed** के बाद अल्पावधि के सर्टिफिकेट कोर्स बहुबिषयक कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में उपलब्ध कराया जाएगा।
3. सेवारत शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम में दिव्यांग बच्चों को पढ़ाने का कौशल लिंग और अल्पसंख्यकों के प्रति संवेदना का ज्ञान शामिल होगा।

वैकल्पिक स्कूलों का विकास पारंपरिक शिक्षा- शास्त्र का संरक्षण

1. NCFSE द्वारा निर्धारित विषय और शिक्षा क्षेत्रों को उनके पाठ्यक्रम में एकीकृत किया जाएगा।
2. उच्चतर शिक्षा में बच्चों का नामांकन बढ़ाया जाएगा। कम प्रतिनिधित्व की समस्या खत्म की जाएगी।
3. पाठ्यक्रम में विज्ञान गणित सामाजिक अध्ययन हिंदी, अंग्रेजी राज्य भाषाओं या अन्य प्रासंगिक विषयों को समावेश करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाएगी।

पुस्तकालयों का सुदृढ़ीकरण हितधारको में जागरूकता

1. पुस्तकों पत्रिकाओं आदि जैसी पर्याप्त पठन सामग्री अन्य शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी।
2. स्कूल शिक्षा प्रणाली के सभी हितधारकों जिसमें शिक्षक प्रधानाचार्य प्रशासक परामर्शदाता और छात्र शामिल हैं को अधिक संवेदनशील बनाया जाएगा।
3. सीखने की सामग्री के प्रसार के साथ-साथ माता पिता के उन्मुखीकरण के लिए एक आधारित समाधान होगा।
4. उच्च गुणवत्ता के मॉडल से भारतीय साइन लैंग्वेज सिखाया जाएगा और भारतीय साइन लैंग्वेज के इस्तेमाल से अन्य बुनियादी विषयों का विकास होगा।

स्कूल परिसरों के माध्यम से संसाधनों का सदुपयोग और प्रभावी शासन

1. स्कूल परिसरों में संसाधनों के साझे उपयोग से दिव्यांग बच्चों और SEDG वर्ग के बच्चों को सहयोग व मदन में सुधार किया जजाएगा
2. स्कूलों/स्कूल परिसर को दिव्यांग बच्चों के समेकन विशेष शिक्षकों की भर्ती और संसाधन केंद्रों की स्थापना के लिए संसाधन उपलब्ध कराया जाएगा।
3. दिव्यांग बच्चों को स्कूल परिसरों के आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए सहायता की जाएगी और इसके लिए एक तंत्र विकसित किया जाएगा।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली है जो सभी को उच्च गुणवत्ता शिक्षा उपलब्ध कराकर और भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर भारत को एक जीवंत समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगी। इस नीति में परिकल्पित है हमारे संस्थानों की पाठ्य चर्चा और शिक्षा विधि जो छात्रों में अपने मौलिक दायित्व और संवैधानिक मूल्य देश के साथ जुड़ाव और बदलते विश्व में नागरिक की भूमिका के उत्तरदायित्व की जागरूकता उत्पन्न करें। इस नीति का विजन है छात्रों में, भारतीय होने का गर्व, केवल विचार में नहीं बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी रहे, साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी होना चाहिए। जो मानव अधिकार हो स्थाई विकास और जीवन यापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो ताकि वह सही मायने में एक योग्य नागरिक बन सकें।

संदर्भ सूची

1. **ठाकुर यतींद्र 2022----:** 'समावेशी शिक्षा का सृजन', अग्रवाल ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन ऑफिस 28/115 ज्योति ब्लॉक संजय प्लेस आगरा-2 ISBN-978-93-85872-65-5.
2. पाण्डेय रामसकल 2001----: शैक्षिक निबंध, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा -2
3. कांडपाल एस., सितंबर 2012: विशिष्ट शिक्षा वर्तमान परिदृश्य में अध्यापक शिक्षा की चुनौतियां, यूजीसी द्वारा संचालित राष्ट्रीय सेमिनार 28.30. 2012 2012.
4. सिंह मदन-----: समावेशी शिक्षा (संशोधित संस्करण), विनय रखेजा एवं आर लाल बुक डिपो मेरठ उत्तर प्रदेश ISBN -978-93-83995-63-9.
5. Sharma yogendra---: inclusive education concept framework approaches and facilitator. kanishka publishers distributor 4697/5-21A Ansari Rd. daraganj new delhi.
6. प्रतियोगिता टुडे---: राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा N.C.F. -2005

   Kumar mahender----: last update on January 23. 2022
7. Row Dr. USHA 2017----: Inclusive education, ISBN 978- 93- 5051- 597 -6 book edition 1st Himalaya publishing house Pvt. Ltd. ISO 9001:2015
8. Government of India---: new education policy 2020 according to Minishtry of Education.
9. Sing, doctor sunit Kumar----: International journals of advanced research in multidisciplinary science (IJARMS) Vol.-3 No.-1 (2020) January.

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

भारत में उपभोक्ताओं के वस्तु - क्रय व्यवहार का अध्ययन

डॉ० पवन कुमार गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
गर्वमेन्ट मॉडल डिग्री कॉलेज, अरनिया, बुलंदशहर

प्रस्तावना

उपभोक्ता व्यवहार सामाजिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जो क्रेता के व्यवहार को समझने, उसकी व्याख्या करने एवं उसके विषय में भविष्यवाणी करने से संबंधित है। उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन किसी व्यक्ति के वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रेता के रूप में, व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन है। यह संपूर्ण मानवीय व्यवहार का अभिन्न अंग है जिसके अंतर्गत समाज में रहने वाले विभिन्न वर्ग के उपभोक्ता, अपनी आवश्यकताओं एवं अपेक्षित इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं को खोजते हैं, उनका आकलन करते हैं और यह निर्णय लेते हैं कि कब, कहाँ, कितना, कैसे और क्यों व्यय किया जाना चाहिए। उपभोक्ता, विशेषकर परिवार जो कि एक महत्वपूर्ण उपयोग यूनिट है का खरीददारी संबंधी व्यवहार उपभोक्ता बाजार को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है। उपभोक्ताओं का क्रय व्यवहार क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अपना प्रभाव उत्पन्न करता है।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों में जहाँ क्रेता दुर्लभ है, वहाँ विपणन ही एक ऐसा परिवर्तनकारी घटक है जो वस्तु की सम्पूर्ण योग्यता को वास्तविकता के रूप में बदल सकती है प्रभावी विपणन व्यवहारों के द्वारा व्यावसायिक चुनौतियों को लाभप्रद अवसरों में परिवर्तित किया जा सकता है। इस परिवर्तन के दौर में विपणनकर्ता के सामने "उपभोक्ता को संतुष्ट करने" की समस्या सामने दिखाई दे रही है परिणाम स्वरूप सभी व्यावसायी, फर्मे तथा अर्थव्यवस्था विपणन योग्य मूल्य को उत्पन्न करने में लगे हुएं है, क्रेताओं की संतुष्टि प्रत्येक व्यवसाय का मलू भतू दर्शन एवं समस्यां बन गया है उनके लिए क्रेता को पाने संतुष्ट करने तथा उसे बनाये रखने का दौर महत्वपूर्ण हो गया है जो संगठन जो कुछ भी कर सकता है उससे अन्ततः उपभोक्ता ही प्रभावित होता है इसलिए ֿर्म के प्रत्येक सदस्य को उपभोक्ता के व्यवहार की जानकारी करने एवं विपणन अवधारणा के प्रति जागरूक होना आवश्यक हो गया है।

उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण एवं संवर्धन के उद्देश्य से भारत में सन् 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाया गया। यह आर्थिक-सामाजिक विधान के इतिहास में 'मील का पत्थर' माना जाता है। हमारे देश में उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से बनाए गए कानूनों की कमी नहीं है लेकिन फिर भी उपभोक्ताओं की स्थिति बहुत दयनीय है आए दिन किसी न किसी रूप में उपभोक्ता शोषण के शिकार बन रहे हैं, देश में उपभोक्ता आंदोलन युरोपीय देशों की तुलना में काफी पिछड़ी हुई अवस्था में है इसका मुख्य कारण उपभोक्ताओं में जानकारी एवं जागरूकता की कमी का पाया जाना है। इसके अभाव में ही उपभोक्ता अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाते हैं एवं स्वार्थी तथा लालची व्यापारियों/विक्रेताओं द्वारा अपनाऐ जाने वाले हथकंड़ों का शिकार बनते हैं। अतः देश में उपभोक्ता आंदोलन को सशक्त बनाने हेतु उपभोक्ताओं को जागरूक बनाना तथा उपभोक्ता शिक्षा का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार करना नितांत आवश्यक है।

उपभोक्ताओं के रूप में हमारे पास वह शक्ति होती है जिसके अंतर्गत हम अपने रूपयों से वोट कर सकते हैं। इस शक्ति का उपयोग कर हम संपूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकते हैं एवं एक ऐसे विश्व का निर्माण करने में अपना योगदान दे सकते हैं जहाँ अर्थव्यवस्था अधिक समान तरीके से जनसामान्य को लाभ पहुँचा सकती है।

उपभोक्ता व्यवहार सामाजिक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जो क्रेता के व्यवहार को समझने, उसकी व्याख्या करने एवं उसके विषय में भविष्यवाणी करने से संबंधित है। उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन किसी व्यक्ति के वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रेता के रूप में, व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन है। यह संपूर्ण मानवीय व्यवहार का अभिन्न अंग है जिसके अंतर्गत समाज में रहने वाले विभिन्न वर्ग के उपभोक्ता, अपनी आवश्यकताओं एवं अपेक्षित इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं को खोजते हैं, उनका आकलन करते हैं और यह निर्णय लेते हैं कि कब, कहाँ, कितना, कैसे और क्यों व्यय किया जाना चाहिए। उपभोक्ता, विशेषकर परिवार जो कि एक महत्वपूर्ण उपयोग यूनिट है का खरीददारी संबंधी व्यवहार उपभोक्ता बाजार को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है। उपभोक्ताओं का क्रय व्यवहार क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अपना प्रभाव उत्पन्न करता है।

उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण एवं संवर्धन के उद्देश्य से भारत में सन् 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाया गया। यह आर्थिक-सामाजिक विधान के इतिहास में 'मील का पत्थर' माना जाता है। हमारे देश में उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से बनाए गए कानूनों की कमी नहीं है लेकिन फिर भी उपभोक्ताओं की स्थिति बहुत दयनीय है आए दिन किसी न किसी रूप में उपभोक्ता शोषण के शिकार बन रहे हैं, देश में उपभोक्ता आंदोलन यूरोपीय देशों की तुलना में काफी पिछड़ी हुई अवस्था में है इसका मुख्य कारण उपभोक्ताओं में जानकारी एवं जागरूकता की कमी का

पाया जाना है। इसके अभाव में ही उपभोक्ता अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाते हैं एवं स्वार्थी तथा लालची व्यापारियों/विक्रेताओं द्वारा अपनाऐ जाने वाले हथकंड़ों का शिकार बनते हैं। अतः देश में उपभोक्ता आंदोलन को सशक्त बनाने हेतु उपभोक्ताओं को जागरूक बनाना तथा उपभोक्ता शिक्षा का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार करना नितांत आवश्यक है।

अध्ययन का उद्दश्ेय - प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत में उपभोक्ताओं के वस्तु - क्रय व्यवहार को प्रभावशाली ढंग से जानकारी करके बेहतर विपणन हेतु सुझाव देना है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय विपणन संगठन द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि भारत में सबसे अधिक मध्यम वर्गीय परिवारों की संख्या है और इनकी आय में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है परिणामस्वरूप इन परिवारों के द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं जैसे फ्रिज, रंगीन टेलीविजन, और दो पहिया वाहनों जैसे स्कूटर, मोटर साइकिलों इत्यादि का क्रय करके उपयोग किया जा रहा है। ये वस्तुएँ समाज के प्रतिष्ठा की सूचक और उपयोगी भी होती है इसलिए अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही है। जिससे इनकी मांग में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

उपभोक्ता व्यवहार का परिचय - द्वितीय विश्वयुद्ध काल तक अधिकांश विश्व अर्थ व्यवस्थाएं उन स्थितियों में चल रही थी, जिसमें व्यवसायी अत्यधिक विक्रय हेतु विज्ञापन एवं अन्य संबर्धनात्मक उपायों को अपनाना पर्याप्त मानते थे और वह यह मानकर चलते थे कि वस्तु की किस्म एवं कीमत उचित होनी चाहिए और अत्यधिक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। क्रेता विवेकशील व्यक्ति होते है और उनको बाजार का सम्पूर्ण ज्ञान होता है। उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुरूप वस्तु खुद खरीद लेते है। इसलिए व्यवसायियों को उपभोक्ता क्रय व्यवहारों का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यवसायियों को तो केवल जनसंख्या वृद्धि एवं आय स्तरों सम्बन्धी जानकारी ही करनी चाहिए। परन्तु वर्तमान समय में परिस्थितियॉ बिल्कुल बदल गयी है। उदाहरण के लिए विपणन दृष्टिकोण ग्राहकोन्मुखी होता जा रहा है। उत्पादन कोई समस्यां नही रह गया है। प्रतिस्पर्धा कंठछेदी रूप ग्रहण कर रही है और विशाल बाजारों की आवश्यकता की पूर्ति ग्राहक सम्प्रभुत्व स्वीकारते हुए करने की समस्यां उग्र होती जा रही है। व्यवसाय प्रबन्धक बाजार से मात्र परिमाणात्मक विश्लेषण का अपर्याप्त अनुभव करने लगे है। आज उपभोक्ता विपणन से पूर्व ग्राहकों के क्रय-व्यवहारों की जानकारी भी परमावाश्यक मानने लगे हैं, ताकि व्यावसायिक संस्थाओं का अस्तित्व सामाजार्थिक औचित्य की कसौटी पर खरा उतर सके।

निर्माताओं द्वारा क्रय प्रेरणाओं की जानकारी - विक्रेताओं के लिए उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क करना असंभव होता है। इसलिए वे उपभोक्ता की वैयक्तिक क्रय प्रेरणाओं की जानकारी आसानी के साथ कर सकते है। किन्तु उत्पादकों अथवा निर्माताओं के लिए उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क करना कठिन नहीं, बल्कि असम्भव भी होता है। इसलिए उन्हें सामूहिक अथवा सामान्य अथवा प्रतिनिधि

क्रय प्रेरणाओं की जानकारी हेतु अभिप्रेरणा अनुसंधानकर्ताओं की सहायता लेनी होती है। वर्तमान समय में अभिप्रेरणा अनुसंधानों द्वारा निष्कर्षों का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। प्रबन्धकों के लिए यह जान लेना ही पर्याप्त नही कि कुल जनसंख्या का कितना प्रतिशत भाग उनकी संस्था द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग करता है तथा उस जनसंख्या में स्त्री, पुरूष तथा बच्चों की संख्या कितनी है ये सूचनाए मात्र उत्पादकों के लिए प्रारम्भिक सूचनाएं मात्र है। उपभोक्ताभिमुखी बाजार प्रवृति ने एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है।

आज कल विपणन शोध का केन्द्र बिन्दु उपभोक्ता एवं उसकी बदलती हुई रूचियां तथा प्राथमिकताएं हो गयी है। वर्तमान परिस्थिति में कोई भी निर्माता किसी भी वस्तु का उत्पादन बिना सोच-विचार किये वगैर नही कर सकता। सर्वप्रथम उसे यह जानना आवश्यक है कि ग्राहकों की आवश्यकताएं क्या है तथा ग्राहक की आवश्यकता के अनुरूप वस्तु को कैसे जोड़ा जा सकता है। साथ ही साथ कौन सी ऐसी शक्तियां या तत्व है जो उपभोक्ताओं की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को प्रभावित करता है। अभिप्रेरण ाा शोध का सम्बन्ध इन्हीं समस्याओं से है। यह शोध ग्राहकों की प्रेरणा व प्रवृति से सम्बन्धित है। इस तकनीक के द्वारा उपभोक्ता के मनोवैज्ञानिक क्यों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। साधारणतः व्यक्ति अज्ञानतावश तथा कभी-कभी जान-बूझकर शोधकर्ताओं को सही जानकारी नही देते है। इसका कारण यह हो सकता है कि उत्तर देना अपनी स्थिति एवं सामाजिक मान्यताओं के विरूद्ध समझते हैं। इस प्रकार से शोधकर्ताओं को सही जानकारी नहीं मिल पाती है। परिणामस्वरूप शोध के निष्कर्ष भी सही नही हो पाते है। निर्माताओं/ उत्पादकों को ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए अभिप्रेरणा शोध तकनीक के प्रयोग द्वारा ही संभव है।

विक्रेताओं द्वारा क्रय प्रेरणाओं की जानकारी - क्रय प्रेरणाओं का सर्वाधिक सही एवं पर्याप्त जानकारी विक्रेताओं को कार्य कुशल, प्रवीण और सफल बनाता है। वर्तमान तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग में वही विक्रेता अधिकाधिक संतोषप्रद पुनर्विक्रय कर पाता है जो तत्काल ग्राहक को देखते ही थोड़ी सी बातचीत के दौरान उसकी क्रय प्रेरणाओं को जान लेता है और उनके अनुरूप अपनी विक्रय कार्यवाही प्रारम्भ कर देता है।

उपभोक्ताओं का क्रय व्यवहार एवं निष्कर्ष - उपभोक्ताओं के क्रय व्यवहार विषमताओं से युक्त है ऐसा होना विशाल जनसंख्या, विभिन्न जातियों, भाषा एवं सामाजार्थिक स्तर पर कोई आश्चर्य की बात नही है। उपभोक्ताओं के क्रय व्यवहारों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा रहा है-

उपभोक्ता के बारे में यह कहा जा सकता कि वह लागत के प्रति अर्थात कीमत के प्रति अधिक जागरूक है और किस्म को अधिक महत्व नही देते है। वर्तमान समय में यह बात प्रमाणिक नही मानी जा सकती है। क्रय शक्ति एवं शैक्षणिक स्तरों के उंचा होने के साथ-साथ उपभोक्ताओं में किस्म

का संचार तेजी से होता जा रहा है। आज मेड इन इण्डिया के स्थान पर मेड इन जापान या मेड इन नेपाल या मेड इन इंग्लैण्ड या मेड इन अमेरिका आदि ट्रेड मार्को वाली वस्तुओं को अधिक प्राथमिकता देते है। विदेशी वस्तुओं के प्रति जो ललक और लालसा तेजी से बढी़ है, वह उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं की खरीद संरचनाओं को प्रभावित करती है। उपभोक्ता वस्तुओं को कीमत की तुलना में तभी प्राथमिकता देते है जबकि किस्म और कीमत के बीच उचित आनुपातिक सम्बन्ध हो। यदि कीमत काफी अधिक है तो वह किस्म की उपेक्षा कर देता है। वस्तुओं की काफी नीची कीमतें भी उपभोक्ताओं को प्रभावित करती है और लगभग सभी वर्ग के उपभोक्ता प्रायः नीची कीमतों वाली वस्तुओं को यह कहकर खरीद लेते है कि पड़ी रहेगी। इस प्रकार के उपभोक्ताओं के क्रय–व्यवहार किस्म बनाम कीमत के सम्बन्ध में समझौता व्यवहार प्रकट करते है।

जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि उपनगरों का निर्माण एवं विकास करना प्रारम्भ कर दिया है जिससे की उपनगरों में क्रय बढ़ने लगा है। धीरे–धीरे देश में यातायात एवं संचार सुविधाओं का भी व्यापक विस्तार हुआ है। उपनगरों में ग्रामीण जनता के लिए पहुंचना और आवश्यक खरीद करना भी सुगम हो गया है। अतः विपणनकर्ताओं को चाहिए कि उप नगरीय खरीदों के गहन एवं व्यापक अनुसंधान कार्यक्रमों को बढा़वा दें जिससे उपभोक्ता क्रय व्यवहारों, क्रय प्रेरणाओं उनकी रूचियों और कठिनाइयों के बारे में सही जानकारी प्राप्त हो सके और उन्हें अधिकतम संतुष्टि उपलब्ध कर सके।

यद्यपि अन्य सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक क्रय प्रेरणायें और व्यावसायिक सुविधाएं उपभोक्ताओं के खरीद निर्णयों को प्रभावित करती है। संरक्षण प्रेरणा देती है और पर्याप्त मात्रा में खरीद हेतु प्रोत्साहित करती है। फिर भी गोरखपुर जनपद के उपभोक्ताओं की निम्न स्तरीय आर्थिक स्थिति ने उधार के महत्व को बढ़ावा प्रदान किया है। इसके अलावा अपनी सीमित क्रय शक्ति के अत्यधिक सदुपयोग को संभव बनाने की तीव्र इच्छा ने भी उन्हें गारण्टी शर्तो के प्रति सम्मान प्रकट करने को विवश किया है। इसी कारण से उधार एवं गारण्टी देने वाले व्यावसायी उपभोक्ताओं से संरक्षण प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. बिहैवियर इन आर्गनाइजेशन पोर्टर लावलर एण्ड हैकमैन एमसीग्राहिल न्यूयार्क 1975।
2. बिहैवियर इन आर्गनाइजेशन मैनेजिंग द ह्यूमन साइड आफ वर्क वरोन एण्ड ग्रीन वेग एलन एण्ड बेकन वास्टन 1990।
3. ह्यूमन बिहैवियर एट वर्क आर्गनाइजेशनल बिहैवियर केथ डेविस टाटा एमसीग्राहिल न्यूडेलही 1975।
4. इन्ट्रोडेक्शन टू बिहैवियर साइंस निचहोल्स एण्ड लार्स पेटिंस हाल 1987।

5. आर्गनाइजेशन बिहैवियर एण्ड परफार्मेन्स सेतागयी एण्ड वैलेन्स स्काट फोर्स मैन ग्लेनविव 1987।

6. सुधा जी.एस. विक्रय संवर्धन एवं विक्रय प्रबन्ध रमेश बुक डिपो जयपुर।

7. एस.के.त्रिपाठी यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन दरियागंज नई दिल्ली 2009

8. Dr. Sanjay Kumar Tripathi "A critical review of the factors affecting purchase intention of consumers," Journal of Annals of Art, Culture & Humanities, Vol. 3, Aug. 2018, pp. 26-32.

9. Dieter B., "Supermarkets on the rise", The Daily Star, December 26, 2008.

10. Jeevananda D.S., "A study on customer satisfaction level at hypermarkets in Indian retail industry", Research Journal of Social Science & Management, Vol.1., 2011

11. Mishra, R.K. , 'Benchmarking scheme for retail stores efficiency', International Journal of Marketing studies, 1(2), 2007.

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

ईशावास्योपनिषद् में मानव जीवन के मूल कर्त्तव्य

डॉ० देवेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।[1]

वैदिक वाङ्मय भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राण तत्व है। यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधार है। यह युगों-युगों से प्रवाहित होने वाली वह पवित्र धारा है जो कि अनेक संक्रमण-व्युत्क्रमणों को पार करती हुई आज भी प्रवाहित हो रही है। इस धारा में अवगाहन कर मानव हृदय को परम विश्रान्ति प्राप्त होती है। वैदिक वाङ्मय के ज्ञान को सरल विधि से प्रकट करने का श्रेय उपनिषदों ने प्राप्त किया है। वेदों के सारभूत होने के कारण ही उपनिषद् वेदान्त कहलाये। उपनिषदों में समता, बन्धुता कर्मशीलता, त्याग की भावना आदि शान्ति के मानवीय मूल्य निहित हैं। उपनिषद् साहित्य केवल जीवन की मुक्ति का मार्ग ही नहीं बतलाता अपितु वर्तमान समय में जीवन जीने की कला को प्रदर्शित करते हुए अनेक समस्याओं से ग्रस्त मानव समाज का वैश्विक स्तर पर कल्याण करने में समर्थ है।

सम्पूर्ण विश्व में वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन प्रत्येक क्षेत्र हिंसादि जैसी समस्याओं से ग्रसित है। जिसका समाधान करने में शासन भी असमर्थ है। भ्रष्टाचार, अपहरण, बलात्कार आतंकवाद, जातिवाद हिंसा, सीमावाद आदि अनेक कुरीतियों से मनुष्य के हृदय से सुख-शान्ति मानों समाप्त ही हो गई हो। प्रत्येक मानव का किसी न किसी रूप में पोर-पोर कराह रहा है, उसे कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है। इनमें अधिकांश समस्याएं तो मनुष्य की मानसिकता पर निर्भर करती है। जिनका समाधान मनुष्य स्वयं खोज सकता है। आधुनिक समय में इन चुनौतियों का समाधान यदि कहीं है तो वह भारतीय उपनिषदों में है। अतः वैदिक वाङ्मय मानव की सुख-शान्ति उसके अस्तित्व की रक्षा और त्रिविध दुःखों का नाश कर उसे स्वस्थ एवं शान्तचित होकर एक आदर्शमय जीने की प्रेरणा देता है।

दुःखत्रयाखभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टेसाखपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोखभावात्।।[2]

त्रिविध दु:ख से पूर्ण निवृत्ति सांसारिक उपायों से होना सम्भव नहीं है इसलिए मनुष्य आदिकाल से परमशान्ति तथा शाश्वत सुख की खोज करता रहा है। त्रिविध दु:खों से आशय है कि मनुष्य के जीवन में तीन प्रकार के दु:ख होते है – आध्यात्मिक दु:ख, आधिभौतिक दु:ख और आधिदैविक दु:ख। ये तीनों दु:ख किसी न किसी रूप में मनुष्य को घेरे रहते हैं। इन तीनों प्रकार के दु:खों से पूर्ण निवृत्ति ही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है।

1. **आध्यात्मिक दु:ख** - आध्यात्मिक दु:ख उन दु:खों को कहते हैं जो व्यक्ति के आन्तरिक कारणों से उत्पन्न या अभिव्यक्त होता है। यह आध्यात्मिक दु:ख दो प्रकार का होता है- शारीरिक और मानसिक दु:ख। इनमें जो शारीरिक कारण जैसे वात, पित्त और कफ की विषमता आदि से जो उत्पन्न होते हैं, वे शारीरिक दु:ख कहे जाते हैं और मानसिक कारणों जैसे- काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि से जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें मानस या मानसिक दु:ख कहा जाता है। उक्त आध्यात्मिक दु:खों की निवृत्ति होने पर व्यक्ति का जीवन कल्याणकारी होता है।

2. **आधिभौतिक दु:ख**- आधिभौतिक दु:ख वह दु:ख होता है जो संसार के विभिन्न प्राणियों जैसे-मनुष्य, सर्प, पशु, आदि एवं स्थावर पदार्थ जैसे वृक्ष, पर्वत आदि के कारण उत्पन्न होता है। उसे आधिभौतिक दु:ख कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के प्रति क्रोधादि करके कष्ट पहुँचाता है, मारता है अथवा प्रताड़ना देता है तो वह दु:ख आधिभौतिक दु:ख कहा जायेगा।

3. **आधिदैविक दु:ख**- यह तीसरे प्रकार का दु:ख किसी सांसारिक प्राणी द्वारा नहीं प्राप्त होता है अपितु यह दु:ख देव, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत आदि के आवेश कारण तथा दैवीय आपदा जैसे-आँधी, तूफान, बाढ़, घनघोर वर्षा, प्लेग एवं कोरोना जैसी महामारी के कारण उत्पन्न होता है, उसे आधिभौतिक दु:ख कहते हैं। वैदिक वाङ्मय तीनों प्रकार के दु:खों से निवृत्ति कराने में समर्थ है, इसके विश्व कल्याणमयी उपदेशों को आत्मसात् कर व्यक्ति स्वयं का, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का कल्याण कर सकता है।

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् वेद के अन्तिम भाग हैं। इनके द्वारा मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति कर सकता है। उपनिषद् शब्द 'उप' (समीप), नि (निष्ठा) उपसर्ग पूर्वक सद् (सद्लृविषरणगत्यवसादनेषु) धातु से क्विप् प्रत्यय होकर बनता है। यहाँ सद् धातु के तीन अर्थ हैं- विषरण, गति, और अवसादन। विषरण का अर्थ है- नाश। गति का अर्थ है- प्राप्त होना तथा अवसादन का अर्थ है- शिथिल करना। इस प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ- ऐसा ज्ञान या विद्या जिसके द्वारा अविद्या का नाश, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति तथा सांसारिक बन्धनों को शिथिल किया जा सके। उपनिषदों की संख्या के विषय में कहा जाय तो इनकी संख्या 108 से लेकर 200 तक मानी गई है किन्तु जिनमें एकादश उपनिषद् प्रमुख हैं- ईष, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्ड्यूक्, तैत्तिरीय,

एतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर उपनिषद्। उक्त उपनिषदों में ईशावास्योपनिषद् लघुकाय एवं एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है। जो शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का चालीसवाँ अध्याय है। इस उपनिषद् में केवल 18 मंत्र हैं, जिसमें कर्म ज्ञान का समुच्चयवाद का बीज पाया जाता है। लघु होने पर भी इसमें अनेक ऐसे संकेत हैं, जिनसे आश्चर्यजनक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। यह एक ऐसा पूर्ण उपनिषद् है कि मानो परमार्थिक जीवन का एक परिपूर्ण नक्शा थोड़े में ही खींचा गया हो। वह वेदों का सार एवं गीता का बीज है। इसे प्रथम उपनिषद् के रूप में मान्यता प्राप्त है इसके प्रथम मन्त्र में "ईशावास्यम्" पद सर्व प्रथम आने से इसका नाम "ईशावास्य" पड़ा। ईशा = ईश्वर के द्वारा, वास्य = व्याप्त है अर्थात् यह सब कुछ ईश्वर के द्वारा व्याप्त है। इस उपनिषद् में ईश्वर के गुणों का वर्णन है, अधर्म त्याग का उपदेश है। सभी कालों में सत्कर्मों को करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सभी प्राणियों में आत्मा को परमात्मा अंश जानकर अहिंसा की शिक्षा दी गई है। समाधि द्वारा परमेश्वर को अपने अन्तःकरण में जानने और शरीर की नश्वरता का उल्लेख किया गया है।

वर्तमान समय में मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बुरी तरह ग्रसित है। यह मेरा है, यह मेरा नहीं है। यह भावना उसके अन्दर घर कर गई है। मोह दुःख के सागर में डुबकी लगाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेता है। वह धनार्जन के लिए निम्न से निम्न कार्य करने में भी संकोच नहीं करता किन्तु वह नहीं जानता कि धन किसी का भी नहीं होता? अतः ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मन्त्र का उपदेश है–

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम्।।[3]

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी चर–अचर जीवन व्याप्त है वह सब ईश्वर के द्वारा बनाया गया है। इसलिए संसार की प्रत्येक वस्तु का त्याग करते हुए भोगों को भोगना चाहिए। किसी के धन के प्रति वासना नहीं रखनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहे तो इस सम्पूर्ण संसार में जो भी जीवन है, सब ईश्वर से भरा है। कोई चीज ईश्वर से खाली नहीं है यहाँ केवल उसी की सत्ता है, वही एक मालिक है। यह समझकर व्यक्ति को सब कुछ उसी को समर्पण करते हुए, उसी का प्रसाद समझकर वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है सब ईश्वर का है– ऐसी भावना रखनी चाहिए। जो मनुष्य इस प्रकार की भावना से युक्त होगा, किसी भी वस्तु को अपना नहीं मानेगा तो वह सबका और सब उसका हो जायेगा। जब व्यक्ति के हृदय में सम का भाव होता है तब वह सबका और सब उसके हो जाते हैं। समानता के भाव का संकल्प ही मनुष्य को उसके अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाता है। यहाँ इस मन्त्र में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक उपभोग करने चाहिए। त्याग पूर्वक उपभोग से आशय है कि सांसारिक वस्तुओं का उपभोग तो कीजिए किन्तु उसमें आसक्ति का भाव नहीं होना चाहिए। यदि वस्तुओं के प्रति आसक्ति होगी तो मोह भी होगा और मोह ही दुःख उत्पन्न

करता है। अतः अनासक्त भाव से वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। इसे एक उदाहरण के द्वारा भी समझा जा सकता है जैसे-मान लीजिए आप किसी बस या ट्रेनादि में यात्रा करते हैं। जब तक आप यात्री के रूप से उस साधन का उपभोग करते हैं। तब आपकी उस साधन के प्रति आसक्ति नहीं होती, आप त्यागपूर्वक उसका आनन्द के साथ उपभोग करते हैं और गन्तव्य तक पहुँचने के बाद प्रसन्नता के साथ उस साधन का त्याग भी करते हैं। परिणाम स्वरूप आपकी यात्रा भी पूर्ण हो जाती है और आपको दुःख भी नहीं होता है। इसी प्रकार जीवन यात्रा में जो भी आपके पास साधन, मित्रादि जो भी सम्बन्ध है, उनका यदि बस या ट्रेनादि के समान त्याग पूर्वक उपभोग करते हैं तो आपका जीवन आनन्दमय व्यतीत होगा और जीवन यात्रा सुखमय व्यतीत होगी।

मनुष्य की इच्छाएं अनन्त होती हैं, और ये इच्छाएं कभी भी पूर्ण नहीं होती। यदि एक इच्छा पूर्ण होती है तो दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है, फिर तीसरी, चौथी इस प्रकार इच्छाओं का अन्त ही नहीं होता। 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' इस मन्त्रांश के द्वारा यही उपदेश दिया गया है कि यदि जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो तो किसी के धन की इच्छा मत करो क्योंकि धन की तृष्णा कभी भी शान्त नहीं होती। इसी धन की तृष्णा के कारण ही मनुष्य बड़े-बड़े अपराधों को करने से संकोच नहीं करता है। परिणाम स्वरूप उसे दुःख की प्राप्ति होती है। यह धन किसी के पास स्थायी नहीं रहता। यह चंचल स्वभाव वाला होता है अतः धन की तृष्णा नहीं रखनी चाहिए। पुरूषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की गणना की गई। इस क्रम में धर्मानुसार ही अर्थ को अर्जित करना चाहिए क्योकि धर्मानुसारेण अर्जित किया गया धन ही मनुष्य को सुख-शान्ति प्रदान करता है। अतः मनुष्य को दूसरों के धन का लालच नहीं करना चाहिए और न ही ईर्ष्या का भाव जागृत होना चाहिए। इस प्रकार उक्त मन्त्र में मनुष्य को सभी सम्पदाओं के अहंकार का त्याग करने का सूत्र दिया है तथा ईश्वर-समर्पण, भोग्य वस्तुओं का प्रसाद रूप में ग्रहण आदि जीवनव्यापी सिद्धान्त को बताया गया है।

आजकल देखा जाता है कि व्यक्ति बिना कार्य किये हुए धन की अभिलाषा रखता है और वह आलसी का जीवन व्यतीत करना चाहता है। वह इच्छा रखता है कि कर्म न करना पड़े और जीवन सुखमय व्यतीत हो जाय परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है ? कि कर्म भी करना न पड़े और सुख भी मिल जाये। ईशावास्योपनिषद् का उपदेश है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोखस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[4]

अर्थात् व्यक्ति को "इस संसार में सद्कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखनी चाहिए। यही एक मार्ग है इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है और इस प्रकार के कर्म से मनुष्य कर्म में लिप्त नहीं होते। इस मन्त्र में विश्वकल्याण के श्रेष्ठतम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि मनुष्य को सदैव निष्काम भाव से कर्म करते हुए सौ वर्षो तक जीवन यापन की इच्छा रखनी चाहिए। यदि मनुष्य

अनासक्त भाव से कर्म करता है तो कर्म में वह लिप्त नहीं होता है। बिना कर्म किए ही दूसरे के धन की अभिलाषा करना, परिश्रम टालने की प्रवृत्ति ही मनुष्य के अन्दर अपराध का बीजारोपण का कार्य करती है। बिना कर्म किए फल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को केवल असफलता, निराशा एवं दु:ख की ही प्राप्ति होती है। मनुष्य के जीवन में सद्कर्म ही एकमात्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति भौतिक उन्नति के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होता है। ईशावास्योपनिषद् का सीधा उपदेश है कि कर्महीन अर्थात् कर्म करने से बचने वाले व्यक्ति को जीने अधिकार नहीं है। यदि वह सुखमय एवं समृद्धिशाली जीवन चाहता है तो उसे सद्कर्म करना ही होगा यही एक मात्र कल्याण का मार्ग है, किन्तु यदि व्यक्ति कर्म को टालता है तो उसका जीवन भारयुक्त होकर शापमय हो जाता है। जाने–अनजाने में सभी मनुष्य यही कर रहे हैं। और इसी से दु:ख भोग रहे हैं। दुनिया में जो भी पाप कर्म हैं, वे सब इसी अकर्मठता से पैदा हुए हैं। अत: दु:ख निवृत्ति हेतु कर्मठ होना आवश्यक है। यही कर्मठता व्यक्ति को सुख के साथ–साथ सांसारिक उन्नति की प्राप्ति कराती है। इसी के कारण मनुष्य स्वयं का परिवार, गांव, देश एवं विश्व का कल्याण करने में समर्थ हो सकता है।

यदि मनुष्य कर्मों को करते हुए आसक्त रहता है तो वह कर्म बन्धन में बंध जाता है, उसे कदापि मुक्ति प्राप्त नहीं होती, उसकी भोग प्रधान वृत्ति हो जाती है यह भोग प्रधान वृत्ति ही उसे दु:ख प्रदान करती है। मनुष्य ईश्वर को ध्यान में रखते हुए कर्म करता है तो उसे सुख प्राप्त होता है। यह संसार ईश्वर द्वारा रचा गया है, संसार की प्रत्येक रचना में ईश्वर की सत्ता है, उसी का अंश विद्यमान है, बिना ईश्वर की सत्ता के एक सूखा तिनका हिल भी नहीं सकता है, तो मनुष्य ऐसे ईश्वर को कैसे भूल सकता है? उसे ईश्वर को सदैव सुख अथवा दुख में निरन्तर स्मरण करना चाहिए। इसके विपरीत यदि मनुष्य उस ईश्वर को भूलकर केवल उसकी बनाई दुनिया को ही सबकुछ समझकर आसक्ति से युक्त होकर केवल सांसारिक पदार्थों का उपभोग करने में व्यस्त रहता है और वह उस परमेश्वर का तिरस्कार कर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करता है तो ऐसा अहंकारी व्यक्ति नरक की पीड़ा को सहन करता है।

व्यक्ति निजकर्मानुसार स्वर्ग और नरक को भोगता है। भगवान ने दोनों ही मनुष्य के लिए बनाये हैं जो व्यक्ति निज शुभ कर्मों को ईश्वर को समर्पित करते हुए करता है तो उसे इसी जीवन में स्वर्ग की प्राप्ति होती है। स्वर्ग से तात्पर्य उसे सुख की प्राप्ति होती है और इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य भगवान को भूलकर, सद्कर्म निष्ठा को त्यागकर केवल आलस्य से युक्त होकर जीवन व्यतीत करता है तो उसे इसी जीवन में दु:ख तो प्राप्त होगा ही साथ ही मरने के बाद भी अनेक असुरों की योनियाँ होती है जो दु:खरूप अन्धकार से आच्छादित होती हैं, वे सब उसे प्राप्त होती है। कर्मनिष्ठा को छोड़कर व्यक्ति आलस्य को अपनाने लगता है तो ऐसे मनुष्यों को इसी जीवन में नरक भोगना पड़ता है। ऐसे मनुष्य "असुरों के जो प्रसिद्ध नानारूपात्मक (योनियाँ एवं नरकरूप) लोक हैं, वे सभी अज्ञान तथा

दु:खरूप अन्धकार से आच्छादित हैं जो कोई भी आत्महत्या करने वाले प्राणी हैं, वे मरणोपरान्त उन्हीं लोकों को पुन:-पुन: प्राप्त करते हैं।"[5] अर्थात् मरने के बाद काम-भोग परायण व्यक्ति को कूकर-शूकर आदि आसुरी योनियों में और भयानक नरकों में भटकना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को ईश्वर को समर्पित करते हुए कर्मों को करना चाहिए जिससे वह सद्गति को प्राप्त कर सके। अनासक्त भाव से किए गये कर्मों का फल शुभ एवं शान्तिदायक होता है। ईश्वर के प्रति समर्पित व्यक्ति को कदापि किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ईशावास्योपनिषद्/मंगलाचरण
2. सांख्यकारिका/ईश्वरकृष्ण/कारिका- 01
3. ईशावास्योपनिषद्/मन्त्र - 01
4. ईशावास्योपनिषद्/मन्त्र - 02
5. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:।
   ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:।।
   (ईशा०उ०/मन्त्र-03)

उत्तर-औपनिवेशिकता के आलोक में अज्ञेय और निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० विकास कुमार

शोध सार

अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने विभिन्न प्रकार के विधाओं में रचनात्मक लेखन किया। उपन्यास, कहानियों और निबंधों में विन्यास विस्तृत और वैविध्यपूर्ण भी है। उपनिवेश का प्रभाव दुनिया के समस्त साहित्य पर एक जैसे नहीं पड़ा, गुलाम देशों ने औपनिवेशिकता से चेतना ग्रहण करके अपने चिंतन को विस्तार देते हुए स्व के प्राप्ति की खोज में अपना अहम् योगदान दिया। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने अपने चिंतन को नया आयाम देते हुए मुख्य रूप से तीन प्रमुख क्षेत्रों में अपने चिंतन को स्थापित दिया। भारतीय चिंतन के सांस्कृतिक आयाम, यूरोप की अन्यता के सामने भारतीय आत्म का संकट तथा राष्ट्रवाद बनाम भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सवाल।

अज्ञेय और निर्मल वर्मा के निबंधों में सांस्कृतिक अस्मिता, भाषा एवं राष्ट्रीयता और भारतीयता की पहचान प्रमुखता से की गई है। अज्ञेय के साथ-साथ निर्मल वर्मा ने भी भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता पर अपने निबंधों के माध्यम से हम सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अज्ञेय और निर्मल वर्मा दोनों ने अपने विमर्श का विन्यास काल प्रत्यय के आसपास बुना है। जहाँ अज्ञेय का ज्यादा ध्यान भारतीय संस्कृति को समझने पर था, वहीं निर्मल वर्मा ने भारतीय काल की अवधारणा का प्रयोग पश्चिमी सभ्यता से भारत के अलगाव को समझने के लिए किया। हालाँकि दोनों ही अपनी बात की शुरूआत इस तथ्य के साथ करते हैं कि पश्चिमी जगत और भारत दोनों की काल बोध की अवधारणा में मौलिक अंतर है।

बीज शब्द- औपनिवेशिकता, उत्तर-औपनिवेशिकता, राजनीति, उपनिवेशवाद, विउपनिवेशीकरण, साम्राज्यवाद, सबाल्टर्न, साम्राज्यवादी, बहुसंस्कृतिवाद, संस्कृति

मूल आलेख- भारतीयों ने कभी भी इतिहास और परम्परा का क्रमबद्ध इतिहास लिखने में अपना समय व्यर्थ नहीं किया। भारतीयों की रचनाओं में ही इनका इतिहास अनेक खण्डों में सुरक्षित

है। रामायण, महाभारत जैसे प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के महत्त्वपूर्ण बिंदु उपस्थित है। यूरोपीय परम्परा में अपने इतिहास को सुरक्षित करने की इच्छा शक्ति सामान्य से कुछ अधिक ही दिखाई देती है, यही कारण है कि यूरोपीय इतिहासकारों ने तथ्यों को अधिक ध्यान में रखते हुए अपनी ऐतिहासिक परम्परा को सबसे प्राचीन साबित करने का प्रयास किया। परन्तु भारतीय साहित्य का बड़ा भाग श्रुति परम्परा का हिस्सा बनकर रह गया। इस परम्परा का बड़ा भाग नष्ट भी हो गया, यहाँ ऐसे किसी इतिहास लेखन का प्रयास नहीं हुआ, यहाँ वाचन शैली से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्मृतियों को सुरक्षित किया जाता था। अंग्रेजों ने भारतीय इतिहास के इस पक्ष को ओर ध्यान नहीं दिया। भारत की इस प्राचीन परम्परा को उनके सांस्कृतिक अस्मिता को कमजोर करने के लिए उपयोग में लाया गया। भारत की इस महान साहित्यिक परम्परा के नष्ट होने का खतरा सदैव बना रहा। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने अपने निबंधों में इसी प्रकार के वैचारिक खतरों के खिलाफ लिखा है। अज्ञेय और निर्मल वर्मा के लेखन में यूरोपीय और भारतीय साहित्य के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था का मूल्यांकन साथ-साथ होता चलता है। अज्ञेय ने अपने प्रसिद्ध निबंध *भाषा और अस्मिता* में भाषा और अस्मिता के मध्य संबंधों पर विस्तार से बात करते हुए लिखा कि "भाषा संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली और समृद्ध उपकरण है, क्योंकि इस संगति और संबंध के बोध का सबसे महत्त्वपूर्ण वाहक है। निःसंदेह नकारात्मक ढंग से इस बात को यों भी कहा जा सकता है कि भाषा की एक बहुत बड़ी विभाजक शक्ति भी हो सकती है। इस नकारात्मक शक्ति के उदाहरण खोजने के लिए हमें दूर भी नहीं जाना होगा। लेकिन यह नकारात्मक शक्ति एक संकटग्रस्त अस्मिता के बोध से ही उत्पन्न होती है। अस्मिता का यह बोध मूलभूत रूप से भाषा के साथ जुड़ा हुआ है और जीवित भाषा की उपज है। क्योंकि कोई किसी भाषा का है; इसके निर्णय से पहले यह आवश्यक है कि वह भाषा उसकी हो; और यह ममत्व जन्म या व्याकरण के अध्ययन से नहीं आता, भाषा के उपयोग से जीवित भाषा से आता है। भाषा का उपयोग जितना ही व्यापक और गहरा होता है, उतनी ही भाषा समृद्धतर होती है और अपने व्यवहर्त्ता को समृद्धतर बनाती है; वैसा प्रयोग नहीं जो शासक के या लोक सम्पर्क कर्मचारियों के या व्यवसायियों के या पंडितों के द्वारा भी किया जा सकता है। भाषा का व्यवहार समृद्धि देने वाला तभी होता है जा उसके साथ लगाव (कमिटमेंट) उसी भाषा के माध्यम से अनुभव के प्रति लगाव होता है। ऐसी ही भाषा, ऐसे ही प्रयुक्त भाषा-अनुभव की भाषा- संस्कृति का और अस्मिता का उपकरण होती है।"[1] भाषा में लगातार व्यवहार से ही उसके स्वभाव में आने वाले परिवर्तन को सकरात्मक रूप से आगे बढ़ाया जा सकता है। सकारात्मक मानव मूल्यों को जन्म देने के लिए सामान्य मनुष्य के द्वारा समाज में भाषा का उपयोग आवश्यक है। मनुष्य अपनी अस्मिता को पूर्ण रूप में केवल तभी महसूस कर सकता है जब वह अपनी भाषा, उस रूप को जाने जो सामान्यतया जीवन को जीने के लिए उपयोगी है। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक अस्मिता की बात को मुख्य रूप से रेखांकित करने का प्रयास किया है। अज्ञेय ने साहित्यकार के रूप में समाज और लेखक के

मध्य रिश्ते को प्राथमिकता के साथ स्वीकार किया है। हिंदी भाषाई समुदाय को अपने पहले पाठक के रूप में देखते उनके सांस्कृतिक अस्मिता को प्रमुखता के साथ स्वीकार किया है। निर्मल वर्मा ने भी अज्ञेय की भांति सांस्कृतिक अस्मिता के लिए भारतीय भाषाई स्वीकृति को महत्त्वपूर्ण माना है। मनुष्य अपने होने अर्थात अपने अस्तित्व को मुख्य रूप से कैसे प्रस्तुत करता है? निर्मल और अज्ञेय ने स्वीकार किया कि मनुष्य अपने होने का परिचय भाषा के माध्यम से ही देता है। शिशु के जन्म के समय उसके रोने के अर्थ को माँ अनुभव करती है और नई दुनिया में उसका स्वागत भी। अर्थात भाषाओं के स्वरूप से उस समुदाय के सांस्कृतिक अस्तित्व का पता चलता है।

अज्ञेय भाषा के साथ हो रहे राजनीतिक प्रयोगों को भाषा के अवमूल्यन के रूप में देखते हुए उसको भाषाई अस्तित्व के लिए खतरा बताते हैं। अज्ञेय लिखते हैं "भारत में राजनीति और व्यापार की भाषा का अवमूल्यन शायद अभी इतनी दूर तक नहीं गया है। कह सकते हैं कि भारत अभी इतना विकसित नहीं हुआ। भारत का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि भाषा के अवमूल्यन की चरम कोटि का परिचय अभी हमें अंग्रेजी के ही माध्यम से मिलता है।"[2] जिस भाषा के अवमूल्यन की बात अज्ञेय ने कि है उस भाषा के व्यावहारिकता में आने वाली गिरावट को समझने और उसके अस्तित्व मूल्यांकन को समझने के लिए भी यूरोपीय भाषाओं का उपयोग किया जा रहा है। अज्ञेय ने माना कि भाषाई परिदृश्य में आने वाली इस सांस्कृतिक इकाई का बिना अनुभव किये अपने रचनात्मक लेखन को स्थापित नहीं कर सकते हैं। संस्कृति और भाषा के मध्य साझा संबंधों को समझने के लिए उनके साहित्यिक स्वरूप में निहित भाषाई प्रयोगों को समझना होगा। भाषा संस्कृति के वाहन का कार्य करती है, सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति उदासीन होकर लेखक अपनी भाषा को न केवल छोड़ता है बल्कि अपने अस्तित्व के गौरव को अस्वीकार भी कर देता है। निर्मल वर्मा और अज्ञेय दोनों विचारकों ने ही सांस्कृतिक अस्मिता के लिए स्मृतियों के संग्रह को प्रमुख रूप से स्वीकार किया है। भाषा के माध्यम से ये स्मृतियाँ ही हैं जो साहित्यिक रूप में प्रकट होती है। राजनीतिक विचारधारा के प्रभाव में लेखकों ने दो या कहे तो तीन पक्षों का निर्माण कर लिया है। तथाकथित एक पक्ष वर्तमान राजनीति से प्रेरित नजर आता है, दूसरा पक्ष उसके विरोधी के रूप में जगह बनाने का प्रयास करता है, तीसरा पक्ष अपने को मुख्य रूप से तटस्थ दिखाने का प्रयास करता है। निर्मल वर्मा और अज्ञेय दोनों ही लेखकों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि साहित्य की रचना जनता को ध्यान में रखकर होनी चाहिए। निर्मल वर्मा ने अपने निबंध *संवाद की मर्यादाएँ* में लिखा कि "अक्सर कलाकार या लेखक से यह माँग की जाती है कि वह अपनी कृतियों को जनसाधारण के लिए सुलभ या ग्राह्य बनाए। इस माँग के पीछे यदि उस दूरी या अन्तराल को पाटने की भावना है जो आज के आधुनिक कलाकार और हमारी अर्द्धशिक्षित गरीब जनता के बीच आ गई है तो भावना महत्त्वपूर्ण है।"[3] यहाँ निर्मल वर्मा ने साहित्यकार और जनता के मध्य में बढ़ती दूरी को कम करने पर विचार किया है। इस माँग के पीछे छिपे राजनीतिक उद्देश्यों

की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते है। लेखक सत्ता का गुलाम होकर उनके राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा करने का हथियार न बनकर रह जाए। "हमारे वामपंथी आन्दोलन के राजनीतिक कार्यकर्त्ता इस समस्या का हल अनेक सरलीकृत भ्रामक तरीकों से सुलझाना चाहते हैं। कला मनुष्य की एक आत्यंतिक, महत्त्वपूर्ण भूख है– आत्मा की भूख। क्या हमारी ट्रेड यूनियनों, मार्क्सवादी पार्टियों ने कभी इस भूख की यातना को समझा है? यदि वे थोड़ा भी समझ पाते तो न वे कलाकार के सृजन–कर्म की अवमानना करते, न हमारी जनता के सौन्दर्य–बोध की अवहेलना करते। तब उनकी पहली माँग कलाकार या कवि से न होती कि वह कैसे चित्र बनाए, या कविताएँ लिखे; बल्कि उस वातावरण को बदलने पर आग्रह होता जहाँ हमारे श्रमिक देशवासी अँधेरे वीभत्स कारखानों, फैक्टरियों में अपने जीवन का अधिकांश समय बिताते हैं। पिछले तीस वर्षों में हमने अपने गांवों को उजाड़ा है, गरीब किसानों और शिल्पियों को मजबूर किया है कि वे अपनी धरती, घर–बार, अतीत को छोड़कर शहरों में उन्मूलित और अनाथ जीवन बिताएं, प्रगति और औद्योगिक विकास के नशे में आदिवासियों की जीवन–प्रणाली को भ्रष्ट किया है।"[4] राष्ट्रवादी नेताओं की तरह ही साहित्य का उपयोग अनेक प्रकार से राजनीतिक हथियार बनाकर उपयोग में लाया गया है। बढ़ते पूंजीवादी प्रभाव के कारण लोग अपने अतीत और सांस्कृतिक अस्तित्व से दूर दर–दर भटकने को मजबूर हो गए। उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श ने बाद में ऐसे ही विषयों पर गंभीरता से बात की है। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ऐसे किसी भी इतिहास को महत्त्व नहीं देते है जिसमें केवल तिथियों को महत्त्व दिया जाता है। किसी तिथि में मनुष्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। मनुष्य का अस्तित्व उसकी सम्पूर्ण स्मृति में ही संभव है। अज्ञेय का मानना है कि वह इतिहास हमारे लिए महत्त्वकांक्षा से भरा हुआ हो सकता है परन्तु यह आवश्यक है कि वह मनुष्य के अस्तित्व को बनाये रखे। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श के विभिन्न विषयों पर गंभीरता से विचार करते हुए अनेक रूपों से अपने विचारों को प्रस्तुत किया है, इस अध्याय में हम मुख्य रूप से *अज्ञेय और निर्मल वर्मा - सांस्कृतिक चिंतन के मूलाधार, यूरोप की अन्यता और भारतीय आत्म का संकट और राष्ट्रीय अस्मिता की खोज और राष्ट्रवाद* जैसे प्रमुख विषयों पर बात करेंगे।

अज्ञेय और निर्मल वर्मा से अपने साहित्यिक चिंतन में सांस्कृतिक पक्षों पर अनेक प्रकार से अपने विचार व्यक्त किए हैं। औपनिवेशिक मानसिकता को समझने और इसके दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए इन दोनों साहित्यकारों ने भारतीय सांस्कृतिक स्थितियों पर गंभीरता से विचार किया है। निर्मल वर्मा अपने निबंध संग्रह *शब्द और स्मृति* में लिखते हैं "मैं वर्षों अपने देश से बाहर रहा हूँ। इससे मेरे भीतर ऐसा अलगाव–सा उत्पन्न हुआ है जो मुझे कभी–कभी बोझ–सा जान पड़ता है किन्तु दूसरी तरफ इसी अलगाव ने मुझे अपनी जातीय अस्मिता और संस्कृति को एक ऐसे कोण से देखने का अवसर दिया है जहाँ भ्रम और भुलावे की गुंजाइश बहुत कम है। मैं एक साथ अपने को बाहर और भीतर पाता रहा हूँ। पश्चिम से मुझे एक तार्किक अंतदृष्टि मिली जिसके सहारे मैंने अपनी संस्कृति के मिथक बोध,

बिम्बों और प्रतीकों की गैर तार्किक अंतर्चेतना को परखने की चेष्टा की हैं। दूसरी तरफ मैं खुद इस अंतर्चेतना का अंश हूँ जिसके आधार पर मुझे आधुनिक तकनीकी सभ्यता के अंतर्विरोधों का एहसास भी होता रहा है।"[5] निर्मल वर्मा ने अपनी वैचारिक चेतना में आए सांस्कृतिक चिंतन का मुख्य कारण अपने प्रवास को माना। अपने देश से उचित दूरी पर रहकर निर्मल वर्मा ने भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता पर अन्य भारतीय विचारकों से अलग विचार प्रस्तुत किया। पश्चिम से तार्किक चेतना को ग्रहण करके अपनी सांस्कृतिक पहचान की पड़ताल करने के दौरान उन्होंने सांस्कृतिक मिथकों, बिम्बों और प्रतीकों का गंभीरता से अध्ययन किया। औपनिवेशिक मानसिकता के चलते भारतीयों में जिस सांस्कृतिक पहचान का ह्रास हुआ था, निर्मल वर्मा ने अपने निबंधों के माध्यम से उसको नए रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। सुधीश पचौरी अपनी पुस्तक निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद में लिखते हैं "तब क्या हम कह सकते हैं कि निर्मल वर्मा हिंदी में उस उत्तर-आधुनिकता के पुरस्कर्ता है जिनकी पुकार इन दिनों ज्यादा सुनाई देती है? लौटने की बात उत्तर-आधुनिकता के 'मुसीबत जदा' हो उठने का, पलटने का ही परिणाम है। यह उत्तर-आधुनिक विमर्शों से साफ जाहिर है। लेकिन स्वयं उत्तर-आधुनिक कहे जाने पर वे आपत्ति करेंगे।"[6] अज्ञेय की भांति ही निर्मल वर्मा ने अपने वैचारिक चिंतन को किसी एक विशेष विचारधारा के माध्यम से देखने का हमेशा से विरोध किया है। हिंदी में आलोचकों ने इन दोनों ही विचारकों पर अनेक प्रकार विचारधाराओं को थोपने का प्रयास अवश्य किया परन्तु वह अधिक प्रभावी कभी नहीं हो सका।

अज्ञेय ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को समझाने के लिए हमेशा भाषाओं के विकास और स्वरूप पर बल दिया है। जैसा यह बार-बार कहा गया कि भाषा के साथ संस्कृति का गहन रिश्ता होता है। अज्ञेय के सांस्कृतिक चिंतन में भाषा प्रमुख इकाई के रूप में हमारे सामने आती है। अज्ञेय का मानना है कि बिना भाषा के समुचित विकास के सांस्कृतिक अस्मिता का सवाल बेईमानी है। अतः कह सकते है कि भाषा अज्ञेय के सांस्कृतिक चिंतन के मूल में हमेशा से उपस्थित रही है। भाषा के सवाल के बाद अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने सांस्कृतिक चिंतन के मूल में निहित स्मृतियों के पक्ष पर बल दिया है। अज्ञेय ने संस्कृति के सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष के रूप में संस्कृति में निहित स्वाधीनता के तत्त्व को रेखांकित किया है। संस्कृतियों में समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु "मानव समाज और मानव संस्कृति की बात करते हुए कहीं भी हम संस्कृति और समाज की उस दूसरी अवधारणा का खंडन नहीं कर रहे होते हैं जो देश-काल से बंधी होती है। भारतीय संस्कृति, यूनानी संस्कृति, मध्यकालीन संस्कृति, आधुनिक संस्कृति इत्यादि अवधारणायें कहीं भी उस व्यापकतर परिकल्पना में आड़े नहीं आतीं। दो प्रकार की अवधारणाओं को हम अलग-अलग स्तरों पर रख लेते हैं- या ज्यादा सही ढंग से यों कहें कि एक बड़े वृत्त के भीतर अनेक छोटे वृत्तों का अस्तित्व मानते हुए चलते है।"[7] मनुष्य अपने साथ अनेक संस्कृतियों के वाहक का कार्य करता है, वह अपने से पूर्व में चली आ रही परम्पराओं

को ग्रहण करके समकालीन समय में उसको जीने की कोशिश करता है। उपनिवेशकाल के दौरान उन्हीं पूर्व सांस्कृतिक स्थितियों पर आरोपित संस्कृति को थोपा गया था। भारतीय को उनके अतीक के साथ अलग करके नए आरोपित सभ्यता एवं संस्कृति का पाठ पढ़ाया गया। इस षड्यंत्र के भीषण परिणाम जल्दी ही सामने आए, भारतीयों में उभर रही राजनीतिक चेतना ने साहित्यिक पुनरावलोकन करते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति को नए रूप में प्रस्तुत किया। निर्मल वर्मा से भारतीय राजनीति में उभरे सांप्रदायिकता जैसे तत्त्वों पर विचार करते हुए इसके औपनिवेशिक चरित्र पर विस्तार से लिखा है।

अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने यूरोप और भारत के मध्य इस अन्यता को खोजने का प्रयास किया है। अंधकार काल की घोर निर्मूल, परम्परावादी मान्यताओं को त्यागकर यूरोप ने विज्ञान का सहारा लेकर अपने को उस अंधकारमय जीवन पद्धति से बाहर लाने का प्रयास किया, परन्तु भारत ने केवल सार्वभौमिक सत्य की तलाश में, विज्ञान को केवल जीवन के एक उपक्रम की रूप में देखता है न कि जीवन के आधार के रूप में। भारतीय और यूरोपीय जीवन दर्शन में कई सारे प्रश्न अंतर हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। साहित्यिक विकास यात्रा में ये अंतर कंक्रीट के रूप में दिखाई देते रहे है। यूरोप में ऐतिहासिकता को मुख्य रूप से महत्त्व दिया जाता रहा है, परन्तु भारत में इस ऐतिहासिकता के लिए स्थान सृजनात्मकता की अपेक्षा में हमेशा कम ही रहा है। *यूरोप की अन्यता और भारतीय आत्म का संकट* पर निर्मल वर्मा और अज्ञेय विस्तार से विचार किया है। निर्मल अपनी पुस्तक भारत यूरोप प्रतिश्रुति के क्षेत्र में यूरोप तथा भारत के सभ्यता संस्कृति में निहित जीवन दर्शन की पड़ताल करते दिखाई पड़ते है। भारत के साथ-साथ दुनिया का बड़ा भाग यूरोपीय देशों का उपनिवेश बना रहा। "एक राज्यसत्ता और कुछ नहीं; अंतत: एक व्यक्ति के आत्मनिष्ठ अहं का वृहत्तर रूप थी, जिसकी सत्ता और पहचान सिर्फ अन्य सत्ताओं के संदर्भ में ही बनती थी- कभी उनके साथ, कभी उनके विरूद्ध-किन्तु अपने से हमेशा स्वतंत्र, अलग और आत्मकेंद्रित। यह ऐतिहासिक संयोग नहीं कि यूरोप में व्यक्तिनिष्ठ मनुष्य को आत्म्रस्तता और स्वतंत्र राष्ट्रों का आक्रमण आत्मबोध इतिहास के एक बिंदु पर ही विकसित हुआ था।"[8] बाइबिल में गुलामों को लेकर जो दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ, उसने दुनिया को लम्बे समय था गुलाम बनाए रखने में अंग्रेजों को प्रेरणा दी। यूरोप ने अपने आर्थिक हितों के लिए हर संभव प्रयास किया। कुछ देशों के अहम् या आत्मग्रस्तता के कारण यूरोप में दो बड़े युद्धों को संभव बनाया। इस युद्धों ने दुनियाभर के सामने जीवन का संकट खड़ा कर दिया। इन विश्व युद्धों ने यूरोप के तथाकथित सभी एवं सांस्कृतिक जीवन दर्शन के प्रति सवाल भी खड़े किए। "राष्ट्र और जाति की यह अहमकेंद्रित अवधारणा यदि यूरोप तह सीमित रहती तो, शायद मानवता के लिए इतना बड़ा संकट उपस्थित न होता।"[9] अपने उपनिवेश बने देशों में भी राष्ट्रीयता को अस्मिता से जोड़कर, प्राचीनकाल से चली आ रही जीवंत और सहिष्णु संस्कृतियों को असहिष्णु बना दिया। इस देशों के सामने आत्म का संकट ही खड़ा कर दिया। भारतीय सभ्यता की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वह अपने अतीत को

अतीत मानकर नहीं चलती थी, बल्कि उसके जीवन अनुभवों को जीवंत बनाते हुए समकालीन भारतीय जीवन व्यवस्था में प्रस्तुत करता था। ये पहले से भी अधिक अर्थवान और संस्कार-सम्पन्न होकर हमारे सामने प्रकट हो जाती थी। पिछले तीन सौ वर्षों में यूरोपीय सांस्कृतिक व्यवस्था ने इस प्राचीन जीवन दर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

निर्मल वर्मा ने यूरोप की इतिहास चेतना पर लिखा कि "यूरोप की इतिहास चेतना वर्तमान और अतीत में जी सीधा-सीधा भेद करती है वह भारतीय सभ्यता के परम्परा-बोध में एकदम बेमानी और अनावश्यक हो जाता है।"[10] यूरोपीय इतिहास का एक बड़ा हिस्सा अंधकार नाम से जाना जाता है। परन्तु भारतीय इतिहास परम्परा में ऐसे किसी काल की स्वीकृति प्राप्त नहीं है। यहाँ इतिहास की एक क्रमबद्ध धारा विद्यमान दिखाई देती है। कलाओं के इतिहास को ध्यान में रखकर देखें तो उसमें उत्तरोतर विकास की अनेक कहानियां मिल जायेंगी। आधुनिककाल के कला आन्दोलनों से पहले आदिकाल और मध्यकाल के साहित्यिक विकास पर ध्यान दें तो वह लोक के साथ संबद्ध दिखाई देता है, यूरोपीय प्रभावों के ग्रहण और स्वाधीन चेतना से लिखे गये साहित्य ने दुनिया को प्रभावित अवश्य किया परन्तु उसकी सीमा है कि वह अपने लोक से पृथक हो गया।

यूरोप की आत्म मुग्धता के कारण उपनिवेशवादी देशों में एक कुंठा और हीनता के बोध को जन्म दिया। इस हीनता बोध से लड़ने के लिए भारतीय लेखकों ने अनेक ऐसी रचनाओं की रचना कि जिसमें भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना को प्रसार का मौका मिल सके।

निर्मल वर्मा ने अपने निबंध *भारतीय जीवन की निराशाएं,* भारतीयों में उपजे निराशाबोध और उसके कारण से उपजी मानसिक क्रियाओं को संतुलित लेखा-जोखा करने का प्रयास किया गया है। निर्मल वर्मा ने लिखा "अंग्रेजी राज के विरूद्ध हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्त करना था। जीवन के हर क्षेत्र में स्वाधीन होना, चिंतन, कर्म और जीवन व्यवस्था को पुनः उन जातीय मर्यादाओं से जोड़ना, जो विदेशी शासन के भीतर भ्रष्ट और दूषित हो चुकी थीं। क्या पिछले वर्षों में हमारे विश्वविद्यालय, लोकतंत्र की संस्थाएं और शासन-व्यवस्था भी हमारे भीतर के उन प्रेरणा-स्रोतों को पुनर्जागृत कर सकी है, जिनके आधार पर हम अपनी मानसिक दासता और निष्क्रियता से छुटकारा पा सकते? क्या स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हमने अपनी जीवन-प्रणाली को कुंठित करने वाली उन बाधाओं को दूर किया- अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली, विदेशी माडल पर बनी शासन-संस्थाएं, जो हमारे स्वाधीन कर्म-चिन्तन को दो सौ वर्षों से अवरूद्ध करती आई थी? आज यदि हम अपने को इतनी असह्य अवस्था में पाते हैं, तो सिर्फ इसलिए कि अंग्रेज हमें जिस गुलामी की बेड़ियों में छोड़ गए थे, उसे बदलने के बजाए, हमारी तथाकथित लोकतांत्रिक संस्थाओं, हमारी पढ़ाई-लिखाई की शिक्षा-प्रणाली, हमारे समूचे शासनतंत्र ने उसे और भी अधिक मजबूत बनाया है।"[11] भारतीय आत्म संकट को

प्रस्तुत करती निर्मल वर्मा की यह पंक्ति भारतीय लोकतांत्रिकता और उसमें निहित राष्ट्रीय चेतना का सवाल खड़ा करती है। तथाकथित प्रगतिशीलता का दमन थामें आलोचकों ने निर्मल वर्मा के प्रश्न को विभिन्न तरह की संज्ञाओं (परम्परावादी, संघी, अतीवादी, पुरातनपंथी, राष्ट्रवादी) का नाम देकर किनारे कर दिया। भारतीय आधुनिक राजनीति में उभरी चेतना को उक्त संज्ञाओं के माध्यम से साहित्य और शैक्षणिक जगत में किनारे किया गया। किसी विचार के हथियार बनाकर आपने उनके द्वारा उठाये गये प्रश्नों से बच नहीं सकते हैं। ब्रिटिशों से राजनीतिक स्वाधीनता लेने के बाद जिस लोकतांत्रिक प्रणाली को बहल किया गया वास्तव में उसमें भारतीय सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर था। यह सवाल केवल तथाकथित राष्ट्रवादियों की ओर से नहीं उठाया गया, उत्तर-औपनिवेशिक चिन्तन में तथाकथित प्रगतिवादी आलोचना का मुख्य प्रश्न यही है। चाहे अफ्रीका के न्गुगी वा थ्योंगो के चिंतन का पक्ष हो या भारत में निर्मल वर्मा और अज्ञेय ही क्यों न हो, यह प्रश्न मुख्य रूप से उठाया गया है।

यूरोप में उभरे राष्ट्रवाद से अलग भारत राष्ट्रीय पहचान के रूप में विश्व पटल पर उभरा है। अज्ञेय ने भाषा को राष्ट्रीय अस्मिता के प्रमुख चिह्न के रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता के पहचान का एक उदाहरण निर्मल वर्मा कुछ इस प्रकार देते है अपने आइसलैंड की यात्रा का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा "लेकिन मैं एक और इंडियन को जानती हूँ, जिनकी किताब मुझे बहुत पसंद है; उन्होंने हँसते हुए कहा और भागती हुई भीतर से एक पुस्तक उठा लाई- मैं इसे बाइबिल की तरह रोज पढ़ती हूँ, उनके हाथों में गीतांजलि का आइसलैंडी अनुवाद था, जो वह मुझे खुरदुरे, किसानी हाथों से दिखी रही थीं। जब मुझसे कोई लिखने के बारे में पूछता है, तो मुझे यही किताबें याद आती हैं. जिन्होंने मुझे 'तीसरी सृष्टि' से साक्षात् कराया था।"[12] निर्मल वर्मा ने जिस प्रमुख प्रश्न को उठाया है वह यही है कि आइसलैंड के छोटे से देश में गीतांजलि के अनुवाद को बाइबिल के बराबर महत्त्व दिया जाता है, यह उसी देश के साहित्य का प्रभाव था जिसको यूरोप में निकृष्ट की संज्ञा दी गई थी। उपनिवेश के दौरान जिस सांस्कृतिक एकता को चुनौतियां दी गई थी, उनकी राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव ने 1857 जैसे प्रथम स्वाधीनता संग्राम को अंजाम दिया था। अज्ञेय ने भी अमेरिका में अध्ययन-अध्यापन करते हुए भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता को प्रमुखता से समझने और समझाने का कार्य किया। अज्ञेय ने अपने निबंधों में राष्ट्रीय अस्मिता की चेतना को प्रमुखता से उठाया है। अज्ञेय के साथ निर्मल वर्मा ने बिना किसी आलोचना की परवाह किये उन विषयों पर गंभीरता से लिखा जिसपे बड़े-बड़े आलोचक लिखने से भागते थे।

अज्ञेय को राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल बहुत बेचैन करता है। उन्हें लगता है कि स्वतंत्रता संघर्ष काल में राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल जो एक बड़ा सवाल बनकर उभरा था उसे स्वतन्त्रता प्राप्ति प्राप्ति के बाद भुला दिया गया है वे मानते हैं कि "सांस्कृतिक एकता का आधार अस्मिता-बोध होता है और अस्मिता का भाषा के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। अज्ञेय को इस बात की गहरी पीड़ा है कि

स्वतन्त्रता के साथ भारतीय समाज को अपनी भाषा नहीं मिली। वे स्वभाषा की उपेक्षा से बहुत दुखी हैं "मुझे शिक्षा मिली, शिक्षा का आधार है भाषा, पर भाषा मुझे नहीं मिली, जिस समय मैं अपनी सहज बोली में सोचना सीख रहा होता, उस समय मैं पराए शब्द–समूह को रटना सीख रहा था; जिस समय मुझे गर्व होता कि मैं अपने को पहचानता हूँ, अपना निर्माता बल्कि रचयिता हूँ उस समय मैं गर्व कर रहा था कि मैं पराई लादी भाषा को ओढ़ और ढो सकता हूँ कि मैं अपना अनुवादक हूँ।"[13] कोई भी राष्ट्र अपनी पहचान बिना भाषा के नहीं बना सकता है। आत्मा की पहचान दूसरे की भाषा के माध्यम से संभव ही नहीं है, भारतीय शिक्षा व्यवस्था में मातृभाषा के सवाल पर स्वाधीनता के बाद भी गंभीरता से विचार नहीं किया गया। नई शिक्षा नीति में इस सवाल पर गंभीरता से विचार अवश्य प्रस्तुत किया गया है। निर्मल वर्मा ने भाषा के साथ आत्म गौरव, ऐतिहासिक पहचान और सांस्कृतिक अस्मिता को राष्ट्र की अस्मिता के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है। भारतेन्दु काल और द्विवेदी युग के साहित्य को राष्ट्रीय साहित्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। भारत के ऐतिहासिकता और सांस्कृतिक प्रश्नों को युगीन परिवेश में ध्यान में रखते हुए उठाया गया है। अज्ञेय और निर्मल वर्मा ऐसे साहित्य को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। अज्ञेय का मानना है कि किसी देश के लिए आर्थिक प्रगति के बावजूद उसकी सांस्कृतिक प्रगति आवश्यक है। मसलन के लिए इजराइल और अमेरिका जैसे देशों के उदाहरण यहाँ दिए जा सकते है। अन्धानुकरण भी किसी देश की राष्ट्रीय अस्मिता के लिए खतरा है। स्वाधीनता के बाद भारत में आए सांस्कृतिक क्षय के प्रति अज्ञेय और निर्मल वर्मा अपने निबंधों में हमें अधिक सचेत करते है। "विडम्बना यह है कि आत्महीनता और अनुकरण की प्रवृत्ति स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद और व्यापक हो गई। पश्चिम का अबाध अनुकरण देश का विशेषतया सत्ता वर्ग का चरित्र बन गया। इसे ही आधुनिकता और प्रगति का आधार मान लिया गया है और उस भौतिक समृद्धि के लिए भी मानदण्ड पश्चिम की वर्तमान समृद्ध अवस्था है। यदि यही आधार रहा और इसी रास्ते पर हम दौड़ते रहे तो हम पश्चिम के पीछे और पश्चिम के पिछलग्गू ही बने रहेंगे बल्कि उसकी अपेक्षा और पिछड़ते ही जाएँगे। अनुकरण की ऐसी दौड़ चली है कि हम दूसरों की ओर देखने में रास्ता देखना भी भूले जा रहे हैं।"[14] निर्मल वर्मा ने भी इसको सांस्कृतिक खतरे के रूप में रेखांकित करते हुए लिखा कि "हमारे साहित्य में न तो हमें अपनी अनास्था दीखती है न अपनी आस्था दीखती है, न अपनी चिन्ता दीखती है। उनकी चिन्ता, उनकी अनास्था, उनका भास हमको दीखता है और उस आधार पर हम अपने को आधुनिक मानते हैं। हर किसी को यह चिन्ता है कि मैं आधुनिक माना जाऊँ, इस अर्थ में कि पश्चिम का मुहावरा बोल सकता हूँ, पश्चिम होना चाहिए, इसकी कोई चिन्ता हमको नहीं है।"[15]

यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार का प्रभाव यह हुआ कि भारतीयों में अपनी भाषा के प्रति हीनता बोध का भाव अस्मिता बोध के भाव में बदल गया। अंग्रेजों ने भारतीयों में सांस्कृतिक अस्मिता को हीनता ग्रंथि के रूप में स्थापित करने सफलता प्राप्ति की। परन्तु अज्ञेय और निर्मल वर्मा सरीखे

लेखकों ने भारत के स्वतंत्र होने के समय से चली आ रही व्यवस्था में बदलाव की उम्मीद की थी परन्तु इनको निराशा हाथ लगी। लोकतंत्र और समाजवाद के नाम पर साम्प्रदायिकता जैसे जहर का उपयोग राजनीतिक लाभ के लिए बढ़चढ़ कर किया गया।

राष्ट्रवाद को हम अपने देश के संदर्भ में देशभक्ति, देशप्रेम, भारतीयता मानें तो कैसे मानें? क्योंकि सबके राष्ट्रवाद को लेकर अलग-अलग अर्थ हैं-सच हैं। सबाल्टर्न वाले पार्थ चटर्जी हो ज्ञानेंद्र पाण्डेय या शाहिद अमीन- ये सभी राष्ट्रवाद को एक समस्या के रूप में व्याख्यायित करते है। यूरोप में राष्ट्रवाद के प्रभाव के चलते जो कुछ हुआ उसका तीसरी दुनिया के देशों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। उच्च आदर्श और सभ्यता का दुनिया को पाठ पढ़ने वाले देशों ने यूरोप की एक आधी से अधिक आबादी को युद्ध में धकेल दिया। निर्मल वर्मा ने अपने साहित्य में इस युद्ध के कारण फैले निराशा बोध को विभिन्न प्रकार से चित्रित किया है। जैसा कि पहले बताया गया कि सांस्कृतिक चिंतन की जिस धारा का अध्ययन स्वाधीनता के दौरान किया गया, स्वतंत्रता के बाद दुर्भाग्य से भारत में मौलिक चिंतन का वह विकास अवरूद्ध हो गया। एक समय गाँधी, अरविन्द, रवीन्द्रनाथ, शुक्ल इत्यादि विद्वान् राष्ट्र और संस्कृति जैसे प्रश्नों पर मौलिक चिंतन कर रहे थे। राष्ट्रीय अस्मिता के नाम पर हमारे पास आर्य और द्रविड़, हिन्दू और मुस्लिम की लड़ाई के राजनीतिक प्रश्न के सिवा कुछ नहीं बचा। इस राष्ट्रवाद की दौड़ में निर्मल वर्मा का ध्यान अंधाधुंध औद्योगिकीकरण और उसके परिणाम के रूप में किसानी-संस्कृति के विनाश पर गया। कहीं-न-कहीं उनके मन में भारतीय किसान की ग्रामीण पीड़ा की रामायण खुली है जिसने शहरीकरण, औद्योगीकरण से होने वाली तबाही की ओर उनका ध्यान केन्द्रित किया। भारतीय जीवन में एकजुट समूह में रहने की परम्परा लम्बे समय से रहती आई है। भारत में उपनिवेश के दौरान औपनिवेशिक सत्ता ने प्रयास किया कि भारतीय चेतना अपने अतीत-बोध से वंचित हो जाये। जो देश अतीत-बोध से वंचित हो जाता है वह किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय अस्मिता से भी वंचित रह जाता है। निर्मल वर्मा ने लिखा है "ये लोग आधुनिक भारत के नए 'शरणार्थी' हैं जिन्हें औद्योगिकरण के झंझावात ने अपने घर जमीन से उखाड़ कर हमेशा के लिए निर्वासित कर दिया है।"[16] यूरोपीय प्रभाव के चलते भारत में जिस पूंजीवाद का परिचय भारत से हुआ उसने सांप्रदायिक ताकतों को और मजबूत किया। भारतीय उपमहाद्वीप में कभी एक भाषा, जाति, धर्म की राजनीति का प्रभाव नहीं रहा था, उपनिवेशवाद के आर्थिक प्रभावों के कारण इस प्रकार के राजनीतिक स्थितियों का जन्म हुआ। भारतीय लोकतंत्र में निहित सामासिक सांस्कृतिक मूल्य एवं नैतिक पक्षों के कारणों पर प्रमुख बात की गई है।

राष्ट्रवाद के विस्तार में आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन का महत्त्व सबसे अधिक था। आर्थिक परिवर्तन ने जल्द ही राजनीतिक स्थितियों को प्रभावित किया, राजनीतिक स्थितियों पर लम्बे समय तक नियंत्रण बनाये रखने के लिए राष्ट्रवादी प्रक्रियों का उपयोग किया गया। इस तरह के राजनीतिक षड्यंत्रों के खिलाफ राष्ट्रीय अस्मिता जैसे प्रश्नों को रखते हुए हम कह सकते है कि भारत के प्रथम स्वाधीनता

संग्राम में जिन प्रमुख प्रश्नों को उठाया गया वह राष्ट्रीय चेतना और अस्मिता से अधिक प्रभावित थे। अंग्रेजों ने उस आन्दोलन को केन्या में हुए माऊ–माऊ विद्रोह के भांति ही मात्र धार्मिक उन्मादी विद्रोह नाम देने का प्रयास किया। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के प्रेरणा स्रोतों या मूलाधारों पर ध्यान देने पर अज्ञेय और निर्मल वर्मा द्वारा प्रस्तुत विषयों को अधिक स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है।

उल्लेखनीय तथ्य है कि राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्नों पर विचार करते हुए हमने पाया कि अनेक बिंदु ऐसे भी हैं जोकि उभयनिष्ठ कारक के रूप में दोनों पक्षों में दिखाई देता है। साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के दौरान राष्ट्रीय चरित्र के उभार और राष्ट्रवाद के उदय को व्याख्यायित करने का सबसे गंम्भीर प्रयास फ्रेंज फैनन का है। फैनन ने राष्ट्रवाद के उदय की आवश्यकताओं और राष्ट्रवाद संस्कृति के निर्माण को प्रेरित करने वाले तत्त्वों की पड़ताल की है तथा इस बात की भी चर्चा की है कि किस प्रकार राष्ट्रीय संस्कृति का विकास उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के लिए आवश्यक था। वे इस ओर भी ध्यान आकृष्ट करते हैं कि उपनिवेश में चलने वाले मुक्तिकामी संघर्षो में किस प्रकार राष्ट्रवाद के उदय ने अथवा राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता के विकास में सहयोग दिया। परन्तु यहाँ कई उभयनिष्ठ तथ्यों के बाद भी राष्ट्रीय अस्मिता के भावना के लिए किसी राजनीतिक प्रकरणों के शरण में जाना आवश्यक नहीं है परन्तु राष्ट्रवाद की धारणाओं में विस्तार के लिए किसी राजनीतिक शक्ति का होना आवश्यक था।

भारतीय राष्ट्रीय एकता के सूत्रों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता निर्मल वर्मा का प्रसिद्ध निबंध *लिखने के स्रोत* जिसमें निर्मल अपने बचपन में दादा के साथ पढ़े गये रामायण, महाभारत और कल्याण पत्रिका में छपे विभिन्न सांस्कृतिक कहानियों की चर्चा करते है, जब साठसाल की उम्र में वे मथुरा और वृन्दावन की यात्रा पर जाते हैं तो दादा के लिए पढ़ी गई कहानियाँ उनको याद आती है, साथ ही चीनी वस्त्रों के व्यापारी लामा को याद करते जो अभी नहीं दिखाई देते। एक मुस्लिम साँई, सूफी फकीर की याद अब भी कहीं भीतर बसी है। वह अक्सर लम्बा ओवरकोट पहनकर सर्दियों में आया करते थे लम्बी कत्थई रंग की दाढ़ी किसी प्राचीन युग के मसीहा की याद दिलाती थी और वे निर्मल वर्मा के घर एक–दो महीना घर ठहरते थे। इस राष्ट्रीय एकता में ही भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता निहित है। राष्ट्रवाद इन पक्षों पर विचार न करके अपने वैचारिक आग्रह को राजनीतिक ताकत के साथ प्रश्रय देने का प्रयास करता है।

"उपनिवेश में अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय संस्कृति का यह प्रत्यय इसलिए आवश्यक है क्योंकि उपनिवेश हमेशा यह साबित करने की कोशिश करता है कि उपनिवेशित की अपनी कोई संस्कृति नहीं, अपना कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं है। कि उपनिवेशित आदिम और बर्बर है। उपनिवेशवाद केवल लोगों को अपने नियंत्रण में लेकर और स्थानीय लोगों के

मस्तिष्क को सभी प्रकार के रूप और विषयवस्तु से रिक्त करने मात्र से संतुष्ट नहीं होता। एक प्रकार के विकृत तर्क से यह उपनिवेशित लोगों के अतीत की ओर जाता है और उसे विरूपित, दूषित और नष्ट कर देता है। उपनिवेशक के स्थानीय संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के इस प्रयास से स्वयं की रक्षा करना और अपने आप को बचाए रखना उपनिवेशित बुद्धिजीवियों का परम कर्तव्य बन जाता है। इसीलिए वे उपनिवेशिकों के आग्रह के विरूद्ध अपनी राष्ट्रीय संस्कृति, अपने गौरवशाली अतीत का अध्ययन और वर्णन करते हैं। क्योंकि राष्ट्रीय संस्कृति के लिए लड़ना सबसे पहले राष्ट्र की आजादी के लिए लड़ना है, उसे भौतिक अनिवार्यता के लिए लड़ना है जो राष्ट्र के निर्माण को संभव बनाती है।"[17] यहाँ फैनन ने यह बताने का प्रयास किया कि राष्ट्र अथवा सांस्कृतिक अस्मिता को नष्ट करने से कैसे कोई उपनिवेश औपनिवेशिक मानसिकता का गुलाम बन जाता है। भारत में प्रथम स्वाधीनता संग्राम से पहले और उसके बाद की प्रक्रियाओं पर ध्यान देकर इस पक्ष पर विचार किया जा सकता है। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के तुरंत बाद ही तीन बड़े विश्वविद्यालयों की स्थापना मद्रास, मुंबई और कलकत्ता में की जाती है। इन विश्वविद्यालयों में यूरोप केंद्रित पाठयक्रमों को यूरोपीय भाषा के माध्यम से भारतीयों को पढ़ाया जाता था। अज्ञेय ने अपने निबंधों में इस तरह के सांस्कृतिक खतरों की ओर इशारा किया है। अज्ञेय ने बताया कि ऐसे ही सांस्कृतिक खतरों का सामना करने के लिए भारतेन्दु और द्विवेदी युग के अनेक साहित्य की रचना हुई। राष्ट्रीय अस्मिता को विकसित करने में सहयोग देने वाले प्रयासों में से एक महत्त्वपूर्ण प्रयास इस तरह के साहित्य का सृजन करना है जो राष्ट्रवादी चेतना राष्ट्रीय गौरव के भाव की अभिवृद्धि करने में सहायक है। विशेषकर जब लड़ाई सांस्कृतिक खतरे की हो तो लेखकों को अपने सांस्कृतिक गौरव के प्रति अधिक जागरूक होना चाहिए। उदाहरण के लिए अज्ञेय द्वारा विभाजन आधारित कहानियों के पीछे सांप्रदायिकता के बढ़ते प्रभावों के विरोध में लेखक की प्रक्रिया माना जा सकता है।

उत्तर-औपनिवेशिकता के आलोक में अज्ञेय और निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन

निष्कर्ष

उत्तर-*औपनिवेशिकता के आलोक में अज्ञेय और निर्मल वर्मा के सांस्कृतिक चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन* करते हुए हमने पाया कि अपने इतिहास को संरक्षित न कर पाने के कारण यूरोपीय विचारकों ने भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ के अपने भ्रामक निष्कर्ष निकले जो किसी भी देश के सांस्कृतिक चिंतन के खिलाफ़ था। अज्ञेय और निर्मल ने अपने निबंधों में इसी प्रकार सांस्कृतिक चिंतन से उभरने के बिन्दुओं पर प्रमुखता से विचार किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रसिद्ध रचना *गीतांजलि* के आइसलैंडी

अनुवाद के माध्यम से निर्मल वर्मा ने दिखाया कि समुद्रों से घिरे छोटे से देश में भारत की इस रचना को बाइबिल के भांति पढ़ा जाता है, भारतीय संस्कृति की इससे खुबसूरत बात और क्या हो सकती है। हिंदी के इतर अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक अन्तः सूत्री कड़ी कार्य करती है जिसके माध्यम हर भारतीय अपने राष्ट्रीय अस्मिता के प्रश्न पर अपनी अभिव्यक्ति दे पता है। उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श में अपनी साहित्यिक पहचान को बनाने और उसके उच्चतर विकास में अज्ञेय और निर्मल वर्मा के साहित्य का प्रमुख योगदान है।

सन्दर्भ

1. *अज्ञेय रचनावली,* संपादक कृष्णदत्त पालीवाल, ललित निबंध खंड-10, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ-347
2. *अज्ञेय रचनावली,* संपादक कृष्णदत्त पालीवाल, ललित निबंध खंड-10, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ-352
3. वर्मा, निर्मल, *कला का जोखिम,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ- 77 -78
4. वर्मा, निर्मल, *कला का जोखिम,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ- 77 -78
5. वर्मा, निर्मल, *कला का जोखिम,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-10
6. पचौरी, सुधीश, *निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ. 14
7. पचौरी, सुधीश, *निर्मल वर्मा और उत्तर-उपनिवेशवाद,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ. 29
8. वर्मा, निर्मल, *भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, भारतीय ज्ञानपीठ,* दिल्ली, 2001, पृष्ठ-12
9. वर्मा, निर्मल, *भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, भारतीय ज्ञानपीठ,* दिल्ली, 2001, पृष्ठ-12
10. वर्मा, निर्मल, *भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, भारतीय ज्ञानपीठ,* दिल्ली, 2001, पृष्ठ-14
11. वर्मा, निर्मल, *भारतीय जीवन की निराशाएँ, भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र,* भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2001, पृष्ठ- 85
12. वर्मा, निर्मल, *आदि, अंत और आरम्भ,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-109
13. *'असन्तोष की पहली पीढ़ी',* वही, पृ.सं.-33, 88
14. *'जनमन्त्र में बुद्धिजीवी की भूमिका* केंद्र और परिधि, पृ.सं.-132
15. *'सभ्यता का संकट केंद्र और परिधि'* पृ.सं.-134
16. *धुंध से उठती धुन*
17. Fanan, Frantz, *The Wretched of the Earth,* Grove Press, New York, 2004, pg.151

प्रवासी हिन्दी साहित्य : अवधारणा एवम् स्वरूप

डॉ० विकास दुबे
विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग
ब्रजराज सिंह पी०जी० कॉलेज
कुबेरपुर, हाथवन्त
फिरोजाबाद (उ०प्र०)

विगत कुछ वर्षो से प्रवासी साहित्य तथा साहित्यकारों को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श जारी है। परन्तु अनेक जन इस संकल्पना से परिचित नहीं है। प्रवासी किसे कहा जाता है? प्रवासी साहित्य, प्रवासी भारतीय साहित्य अथवा प्रवासी 'हिंदी' साहित्य किसे कहते हैं? इसका स्वरूप कैसे होता है? इसकी सृजनात्मकता किन में होती है? हम किन्हें प्रवासी साहित्यकार कह सकते हैं? अनेक प्रश्न उभरकर आते हैं? विद्वद्जन सोचते रहे। विचार विमर्श जारी रहा। पत्र पत्रिकाऐं निकलती रही ओर अनेक हुनर सामने आते गये।

भारतीय मूल के लोग समस्त विश्व में फैले हुये हैं। उन्होंने विदेशों को अपनी कर्मभूमि बनाया है। यह बात नवीन नहीं है। प्रवासी साहित्य भी नवीन नहीं है। परन्तु बीसवीं सदी में प्रवासी भारतीयों ने भारतीयता की अस्मिता को जिंदा रखने की भरसक कोशिश की है। प्रवासी साहित्य जो पहले उपलब्ध था, उससे आज का प्रवासी साहित्य एकदम अलग है। इन पैंतीस-चालीस वर्षो में नवीन विद्युत्यिकी के तकनीक विकसित हुये। प्रौद्योगिकी चरम् सीमा लांघती गयी, तो यह साहित्य भी अधिकाधिक जनप्रिय होता गया। जन जन तक पहुँचता गया। प्रवासी भारतीय भारत से दूर होते हुये भी इस माध्यम से बहुत सान्निकट् होते गये हैं। भारतीय मूल के विदेशों में रहने वालों के सृजनात्मक लेखन को प्रवासी साहित्य कहा जाता है और जिन्होंने हिन्दी को केंद्र में रखकर या माध्यम बनाकर या हिंदी में लिखा है वे प्रवासी हिंदी साहित्यकार हैं तथा यह बहुत समृद्ध 'प्रवासी साहित्य' हैं।

प्रवासी हिंदी साहित्य के अंतर्गत कविताएँ, उपन्यास, नाटक, एकांकी, महाकव्य, खण्डकाव्य, अनूदित साहित्य, यात्रा वर्णन, आत्मकथा आदि का सृजन हुआ है। प्रवासी साहित्यकारों की संख्या भी श्लाघनीय है। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा नीति-मूल्य, मिथक, इतिहास, सभ्यता के माध्यम से 'भारतीयता' को सुरक्षित रखा है। 'हिंदी' को प्रवाहित रखा, जिंदा रखा। इन साहित्याकारों में प्रमुख नाम हैं-साहित्यकार हरिशंकर आदेश। उनकी लगभग तीन सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। वे

1966 से 1976 ई. तक वेस्ट इंडिज में भारत के उच्चायुक्त के रूप में कार्यरत रहे थे। वेस्ट इंडिज में अपने कार्यकाल के दरमियान उन्होंने अवलोकन किया कि चर्च द्वारा वहाँ बसे हुए भारतीयों (जिन्हें वर्षों पहले ब्रिटिश मजदूर बनाकर ले गये थे) पर धर्मांतरण के लिये दबाब डाला जा रहा है। महाकवि आदेश ने इस बात को गंभीरता से लिया। उन्होंने इसे रोकने के लिये नामकरण से लेकर मृत्युसंस्कारादि धार्मिक कार्य के लिये वहाँ के निवासियों को प्रशिक्षित किया। आदेश जी के कारण वहाँ के लोगों को राहत मिली, सुरक्षा महसूस हुयी। इसलिये उन्हें उनका कार्यकाल खत्म होने के बाद भी किसी ने भारत लौटने नहीं दिया। लगभग 50 वर्ष हो गए, वे कहीं के होकर रहे हैं। उन्होंने वेस्ट इंडिज में भारतीय विद्या संस्थान की स्थापना की है।

इस संस्था द्वारा उन्होंने बी०ए० स्तर के हिंदी पाठ्यक्रम सीखने का प्रावधान किया है। इतना ही नंही, ष्टभारतीय अभिजात्य संगीतष्का पाठ्यक्रम भी शुरू कर रखा है। उन्होंने भारत और हिंदी सम्बन्धी गीत लिखे है। उन गीतों तथा रागों का अध्यापन वे स्वयं करते रहे हैं। उनकी हिंदी की तीन सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, भगवतगीता का हिंदी और अंग्रेजी पद्यानुवाद, तीस नाटक, एकांकी, जीवनियाँ आदि हैं। संगीत और साहित्य के माध्यम से उन्होंने 'भारतीयता' को जिंदा रखा है। 'हिंदी' के प्रचार-प्रसार में प्रवासी भारतीय साहित्यकार हरिशंकर आदेश का नाम अग्रणी है। वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हैं- जैसे विश्व कवि, महाकवि आदि अनेक। उनमें भारत सरकार का प्रवासी भारतीय 'साहित्यकार' सम्मान प्रमुख है।

प्रवासी हिंदी साहित्यकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, गुयाना, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद (वेस्ट इंडिज) आदि स्थानों को अपनी कार्यभूमि स्वीकार कर साहित्य सृजन करते आए हैं। भारत सरकार के सांस्कृतिक सम्बन्ध की पत्रिका 'गगनांचल', अलीगढ से निकलने वाली वर्तमान साहित्य (सम्पादक प्रो० के०पी० सिंह और नमिता सिंह) ने 'प्रवासी साहित्य' महाविशेषांक (दो भाग) प्रकाशित किये हैं। कुछ स्तरीय हिंदी पत्रिकाओं ने भी प्रवासी साहित्य पर विशेष लेख प्रकाशित किए है। आज इस विषय को केन्द्र में रखकर संगोष्ठियों, विचार-विमर्श, अनुसंधान प्रारम्भ हो चुका है। शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के हिंदी विभाग में 'प्रवासी साहित्य तथा साहित्यकारों' पर अनुसंधान सम्पन्न हुआ है।

प्रवासी हिंदी साहित्यकार अलका शर्मा वॉइस ऑफ अमेरिका में कुछ समय कार्यरत रही थीं। बाद में लंदन में बी.बी.सी. की हिन्दी सेवा की अध्यक्ष हैं। इनके लेखन में भारतीय समाज की संवेदना की अभिव्यंजना दिखाई देती है। अर्चना पैन्यूली डेनमार्क में रहती है। इनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी है। ये अच्छी अनुवादक भी हैं। अनिल कुमार 'प्रभा' अमेरिका में रहती हैं। वॉइस ऑफ अमेरिका में संवाददाता के रूप में कार्यरत रही हैं। न्यूजर्सी में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्राध्यापिका हैं। इनके लेखन में स्त्री की महत्वाकांक्षा तथा उसकी त्रासदी अंकित है। इन्होंने इला नरेन नाम से रचनाएँ की

हैं। इनके कहानी संग्रह, कविता संग्रह प्रकाशित हुये हैं। उमेश अग्निहोत्री अमेरिका में रहते हैं। उनके दो टेलि नाटक, मंच नाटक प्रकाशित हुये हैं। 1996 ई. से वे वाशिंगटन महानगर के टेलीविजन प्रोग्राम के लिये 'अमेरिका में भाषाओं के सांस्कृतिक अनुभव' विषय पर एक प्राक्षिक प्रकरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इनकी कहानियाँ अनुभवों की प्रस्तुति हैं। वे पाठकों के साथ संवाद स्थापित करती हैं। उषाराजे सक्सैना विख्यात प्रवासी हिंदी साहित्यकार हैं। इग्लैंड को कर्मभूमि बनाकर प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों में इन्होंने काफी सक्रियता रखी है। इनके साहित्य में भारत, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा के प्रति के हर तरह के अनुभव तथा विचार प्रकट होते दिखाई देते हैं। अनेक विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में ये छपती रही हैं। इनके दो कविता संग्रह, एक कहानी संकलन, कहानी संग्रह प्रकाशित हुये हैं। संप्रति वे ब्रिटेन की ष्टपुरवाईष् नामक पत्रिका की संपादक है। इनके लेखन में आशा की संभावना नजर आती है। इन्होंने अपने समय तथा समाज की विडम्बना और सत्य को अपने लेखन मे अभिव्यंजित करने की कोशिश की है। ऊषा वर्मा यॉक्र विश्वविद्यालय में अनेक वर्षो से हिंदी पढाती हैं। इनके कविता संग्रह, कहानी संग्रह, अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

भारतीय तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में ये काफी लिखती रही हैं। समीक्षकों का मत रहा है कि इनकी कहानियों द्वारा संवेदना, सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार व्यक्त होता रहा है। अधिकतर पश्चिमी समाज की विसंगति इनके लेखन द्वारा अभिव्यक्त हुयी है।

प्रवासी हिंदी साहित्य ने अपनी एक अलग पहचान बनाए रखी है। हिंदी शब्दकोशों में प्रवासी का अर्थ प्राप्त होता है- विदेशों में रहने वाले भारतीय। परन्तु अन्य भाषाओं में इस शब्द का अर्थ अलग है तथा प्रयोग भी।

कुछ विद्वानों के मतानुसार हिंदी में इसका बहुत संकुचित अर्थ लिया जाता है। व्यापक अर्थ में जो लेखन अपने घर से दूर हुआ हो यानी विदेश में या अपने घर से दूर वह प्रवासी साहित्य है।

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी लंदन में भारतीय उच्चायुक्त रह चुके हैं। उनके वहाँ के कार्यकाल में हिन्दी भाषा और साहित्यिक सृजन में काफी परिवर्तन हुआ। 2000 ई. से वहाँ हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता के माध्यम से हिंदी के प्रति सजगता हुयी है। अमरदीप, पुरवाई पत्रिकाओं द्वारा हिंदी साहित्यकारों की साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। ऊषा वर्मा लंदन के 'यॉक्र' में रहती है। उनके कविता संग्रह चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुये हैं। साथ ही भारतीय तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ छपी हैं। जेनेन्द्र शर्मा अंग्रेजी में एम०ए० कर चुके है। लंदन में ड्राइवर के पद पर कार्यरत हैं। वे अनेक सम्मानों से पुरस्कृत हैं।

हिंदी धारावाहिक लेखक, कहानीकार, कवि के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। उनके लेखन में लंदन में बसे हुये भारतीयों की पीड़ा का अंकन हुआ दिखाई देता है। उनकी 'टेम्स का पानी', 'मरे पासपोर्ट

का रंग' कविताएँ बहुत चर्चित रही हैं। कृष्ण बिहारी अबू धाबी में वरिष्ठ हिंदी अध्यापक हैं। इन्होंने अनेक एकांकी नाटक लिखे हें। साथ ही निर्देशन भी किया है। उनके तीन उपन्यास और तीन गीत संकलन प्रकाशित हुये हैं। उनकी कुछ कहानियों का मंचन भी हुआ है। साथ ही कुछ कहानियों के उर्दू, नेपाली, पंजाबी में अनुवाद भी हुये हैं।

हम निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि प्रवासी साहित्य अत्यन्त सम्पन्न है। प्रवासी साहित्यकार भी अपनी अलग पहचान बनाकर सृजनरत हैं। हम इनके साहित्य को पढकर विदेशों के अनेक अनुभवों, भावनाओं, संवेदनाओं से जुड़ सकते हैं। यह बात भी स्पष्ट होती जाती है कि मानवीय संवेदनाओं को देशकाल की मार्यादाऐं नहीं होती है।

सन्दर्भ सूची

1. कुछ गांव- शहर, कुछ शहर-शहर, नीना पॉल, यश पब्लिकेशन्स, 1/11848 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032।
2. कौन सी जमीन अपनी, डॉ० सुधा ओम ढींगरा, भावना प्रकाशन, 09-ए. पटपडगंज, दिल्ली- 110091।
3. शाम भर बातें, दिव्या माथुर, वाणी प्रकाशन, दरियांगज, नई दिल्ली-110024।
4. चिड़िया और चील, सुषमा बेदी, अभिरूचि प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110325।
5. हवन, सुषमा बेदी, अभिररूचि प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110325।

दलित संघर्ष और दलित उत्कर्ष मीमांसा

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी०जी० कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

भारतीय राजनीति में दलितों के उभार के साथ-साथ साहित्य, संस्कृति और कला की दुनिया में भी दलितों का वर्चस्व बढ़ा है। साठ के दशक में मराठी में प्रकाशित दलित लेखकों की आत्मकथाओं ने न केवल मराठी समाज को बल्कि हिन्दी समाज को भी गहराई से उद्वेलित किया। रमाबाई रानाडे, दया पवार और शरण कुमार लिम्बाले की आत्मकथाओं में व्यक्त दलितों के शोषण की मार्मिक व्यथा ने इस तथ्य को स्थापित करने में मदद की। दलित जाति के लेखक जिस विश्वसनीयता और तथ्यपरकता और संवेदना से अपने जीवन संघर्षों को व्यक्त कर सकते हैं, गैर दलित लेखकों के लिए यह मुमकिन नहीं है। दलित समाज के लेखक आज दलित साहित्य के नए सौन्दर्य शास्त्र के साथ सामने आ रहे हैं। उनका कहना है कि उनके रचित साहित्य में दलित समाज का वास्तविक चेहरा परिलक्षित होता है। यद्यपि दलित जीवन को लेकर लिखने वालें प्रेमचंद, निराला, अमृतलाल नागर और अनेक सवर्ण लेखकों ने इस समाज को अपने अनुभव और अनुभूति के बल पर चिषित किया है और एक प्रगतिशील रूख के साथ सामाजिक चेतना के जागरण का महत्वपूर्ण काम किया है। किन्तु उनके लेखक के केन्द्र में दलित जीवन नहीं है। हिन्दी पट्टी में दलित चेतना का विकास काफी देर से हुआ जबकि इससे पहले मराठी और दक्षिण भारतीय भाषाओं में यह पहल हो चुकी थी।

दलित साहित्य पर जब चर्चा चलती है तो सबसे पहले स्वाभाविक रूप से जो प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या साहित्य का विभाजन जाति के आधार पर भी सम्भव है? चूँकि साहित्य का भाषायी आधार पर जन-मानस में स्थापित है, जैसे- हिन्दी, उर्दू, बंग्ला, कन्नड़, तमिल, मराठी और अंग्रेजी आदि भाषाओं का साहित्य। इसलिए साहित्य का कोई जातीय आधार भी हो सकता है। यानी साहित्य दलित और गैर दलित के बीच भी विभाजित हो सकता है। यह आसानी से लोगों के गले नहीं उतर रहा है। साहित्य हिन्दुत्ववादी भी है, इस्लामी और ईसाई भी है, जैन और बौद्ध भी है, वामपंथी और दक्षिणपंथी भी है एवं गाँधीवादी और लोहियावादी भी है। वह राष्ट्रवादी भी है और भूमण्डलवादी भी है। फिर वह दलितवादी क्यों नहीं हो सकता?

जाति की भूमिका के संबंध में, डॉ० अम्बेडकर ने लिखा है– "जातियाँ एक संघ भी नहीं बनातीं। कोई जाति दूसरी जातियों से जुड़ने की भावना भी नहीं रखती। सिर्फ हिन्दू–मुस्लिम दंगों के समय आपस में जुड़ती हैं। अन्य अवसरों पर हर जाति अपने को अलग रखने का प्रयत्न करती है और अपनी विशेषता बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहती है। प्रत्येक जाति केवल आपस में भोजन व विवाह करती हैं, यहाँ तक कि प्रत्येक जाति की अपनी विशेष पोशाक होती है।"[1]

"एक सवर्ण हमेशा सवर्ण रहता है
एक अछूत हमेशा अछूत रहता है
एक ब्राह्मण हमेशा ब्राह्मण रहता है।
एक भंगी हमेशा भंगी रहता है।
वे ऊँचे रहते हैं, जो ऊँचे पैदा होते हैं।
वे नीचे रहते हैं, जो नीचे पैदा होते हैं।
भाग्य के कठोर नियम पर खड़ी है,
यह व्यवस्था अपरिवर्तनीय।
इसलिये व्यक्ति की योग्यता निरर्थक है,
नीतिवान अछूत भी नीचा है, हीन सवर्ण से
धनवान अछूत भी नीचा है, धनहीन सवर्ण से।"[2]

कुछ लेखकों द्वारा 'दलित' शब्द की जो परिभाषाएँ और व्याख्याएँ की गयी है, उनमें काफी कुछ व्यापक और उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। उनके अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ कुचला हुआ, दलित या वंचित है– इस आधार पर ये सभी अभावग्रस्त लोगों को दलित मानते हैं, चाहे वे किसी भी समुदाय के हों। वास्तव में 'दलित' वही व्यक्ति हो सकता है, जो सामाजिक तथा आर्थिक दोंनों दृष्टियों से दीन–हीन है। आज हम दलित–दलित चिल्लाते रहते हैं लेकिन कुछ राज्यों जैसे बिहार में दलित से भी नीचे महादलित जाति की चर्चा शुरू हो चुकी है। अपने जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिये कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।

हिन्दी दलित साहित्य ने मुख्य ऊर्जा और चेतना डॉ० अम्बेडकर के दर्शन से प्राप्त की है, पर डॉ० अम्बेडकर उसके जनक नहीं हैं। डॉ० भीमराव अम्बेडकर व्यक्तिगत जीवन में इतने बड़े विद्वान होंने के बावजूद खुद जातीय हीनता से ग्रसित थें। उन्होंने हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म अपना लिया फिर भी हीन भावना उनका पीछा नहीं छोड़ा, यह एक दलित होने के नाते बड़ा सवाल है। डॉ० अम्बेडकर धर्म के विरोधी नहीं थें, अपितु धर्म को मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक मानते थे।

भारतीय राजनीति में जनता के आदमी के रूप में तेजस्वी और प्रतिभाशील नेता बाबू जगजीवन राम का उदय हुआ, जिन्होंने तथाकथित दलित संसार को वे सारी सुविधाएँ दिलाई, जिनके लिए डॉ० अम्बेडकर सपना देखते थे।

"मैं कहना चाहता हूँ कि दलित-लेखकों को सारी प्रतिभा के बावजूद अपनी इयत्ता पर विश्वास करना होगा। अपने रहन और सहन में दलित विश्वसनीयता प्राप्त करनी होगी। कुरीतियों और आसनों से उतर कर उस शब्द-विवेक के लिए जूझना पड़ेगा, जो कामगार, दस्तकार शब्दावली को, कर्घा को, रोजी को, ताना-बाना को और कुल मिलाकर अपनी जूतों से भरी कठवत को अध्यात्म के शिखर तक उठाना होगा। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। शास्त्र, विद्या और ज्ञान से सँवारे शब्दों को छोड़कर मेहनत-मजदूरी, दस्तकारी के शब्दों का विश्वास करना होंगा। दलित-दु:ख लिखने के लिए दलित शब्दावली का अन्वेषण करना होगा।"[3]

दलित साहित्य पीड़ा, वेदना, मुक्ति का ही साहित्य नहीं, बल्कि यह अपने अधिकारों, अस्मिता और पहचान के लिए संघर्ष करने वालों का साहित्य है। मस्तराम कपूर ने लिखा है, "आत्मकथाओं में लेखक की प्रवृत्ति अपने अनुभवों को अनन्य बनाने की होती है अर्थात् जो हमने भोगा और सहा है, वह किसी और ने भोगा और सहा नहीं होगा। यह प्रवृत्ति उसे जीवन को एकांगी दृष्टि से देखने पर विवश करती है।"[4]

प्रारम्भ में दलित साहित्य की मुख्य विधा आत्मकथा ही रही, जो उनके भोगे हुए अनुभव पर आधारित होती है।

ओमप्रकाश बाल्मीकि ने "दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र" की भूमिका में दलित रचना एवं आलोचना के उदय के कारणों की चर्चा करते हुए लिखा है कि "दलित लेखकों द्वारा आत्मकथाएँ लिखने की जो छटपटाहट है, वह भी इन स्थितियों की ही परिणति है। सामाजिक अंतर्विरोध से उपजी विसंगतियों ने दलितों में गहन नैराश्य पैदा किया है। सामाजिक संरचना के परिणाम बेहद अमानवीय एवं नारकीय सिद्ध हुए हैं। सामाजिक जीवन की दग्ध अनुभूतियाँ अपने अंतस में छिपाए दलितों के दीन-हीन चेहरे सहमे हुए हैं। इन भयावह स्थितियों के निर्माता कौन हैं? दोहरे सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी ढोते रहने को अभिशप्त जनमानस की विवशता साहित्य के लिए जरूरी क्यों नहीं है? क्यों साहित्य एकांगी होकर रह गया है? ये सारे प्रश्न दलित साहित्य की अंत:चेतना में समायोजित है।"[5]

दलित कवि ओमप्रकाश बाल्मीकि की राजनैतिक सरोकारों की इस कविता का अवलोकन कीजिए-

"वर्ण व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श
खुश हो जाते हो

साम्यवाद की हार पर।
जब टूटता है रूस
तो तुम्हारा सीना छत्तीस हो जाता है
क्योंकि मार्क्सवादियों ने
छिनाल बना दिया है
तुम्हारी संस्कृति को।
पूजते हो गांधी के हत्यारे को
तोड़ते हो इबादत गाह झुण्ड बनाकर।"[6]

संदर्भ सूची

1. कंवल भारती, उत्तर प्रदेश, सितम्बर-अक्टूबर, 2000, पृ० 11
2. डॉ० भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में, कंवल भारती, उत्तर प्रदेश, सितम्बर-अक्टूबर, 2002, पृ० 11
3. डॉ० शुकदेव सिंह, उत्तर प्रदेश, सितम्बर-अक्टूबर, 2002, पृ० 15
4. दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, प्रीत विहार, दिल्ली-92, 1999 (लौप के मैटर से)
5. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमप्रकाश बाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ० 10 (भूमिका)।
6. बस्स बहुत हो चुका : ओंमप्रकाश बाल्मीकि, पृ० 50-51

नयी कविता एक पुनर्मूल्यांकन

डॉ० विकास कुमार
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

"परिवेश" "काल" के खण्ड-विशेष को कहते हैं। परिवेश शब्द का मूलतः विवेचन इतिहास सम्मत है, लेकिन साहित्य का सम्बन्ध भी इतिहास से अछूता नहीं है। इतिहास के आलोक में मानव जगत की समग्रता को व्यक्त करना ही साहित्यिक परिवेश है। परिवेश बदलते हुए समय का साक्षात्कार है। साहित्य का रचनाकाल इतिहास की काल-सीमा के समानान्तर चलता है। साहित्य और इतिहास दोनों परिवर्तन वैविध्य या विकास यात्रा के साक्षी होते हैं। इस यात्रा में युगीन पाठको की रुचि भी सम्मिलित होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास काल में प्रत्येक काल का अपना एक परिवेश रहा और कवियों का समूह भी प्रवृत्ति-विशेष के आधार में ढल कर काव्य रचना करता रहा।

सामान्यतः किसी भी काव्य प्रवृत्ति के उद्गम को निश्चित तिथि से नहीं बांधा जा सकता है, किन्तु साहित्येतिहासकार काव्यधारा विशेष की परम्परा पर विचार करते हुए भी उसके प्रवर्तनकाल के निर्धारण से विमुख नहीं होते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास क्रम के विवेचक छायावाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के पश्चात् "नयी कविता" का नाम लेते हैं, लेकिन स्पष्ट है कि सभी युग का अपना परिवेश है। स्वतन्त्रता- प्राप्ति के बाद मानसिक तौर पर विभिक बदलावों के साक्षी हिन्दी प्रदेश की युवा शक्ति के साहित्यिक विद्रोह को मूर्त करने वाली नवीन रचनात्मकता के प्रति समीक्षकों ने अनेक भ्रान्त धारणायें प्रचारित कर रखी है।

हिन्दी साहित्य में नई कविता के प्रादुर्भाव से पहले पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं छायावाद और प्रगतिवाद का अवसान हो चुका था प्रयोगवादी काव्यधारा मुख्य काव्य धारा के रूप में प्रवाहमान थी। ऐसा नहीं है कि इस समय छायावादी और प्रगतिवादी रचनायें नहीं हो रही थी। रचनाएँ तो छायावादी और प्रगतिवादी ढंग की अब भी हो रही थी, किन्तु अब छायावाद और प्रगतिवाद मुख्य काव्यधारा नहीं रह गए थे। साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में अब छायावाद और प्रगतिवाद के स्थान पर प्रयोगवाद ही मुख्य काव्यधारा के रूप में प्रवाहमान थी, जो आगे चलकर नयी कविता के रूप में पर्यवसित हो गया। अब हम नयी कविता के पूर्ववर्ती काव्य विशेषतः छायावाद के परिवेश को व्याख्यायित कर रही हूँ।

छायावाद

छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के रोमाण्टिक उत्थान का वह परिवेश है जो लगभग सन् 1918 से 1936 अर्थात् उच्छवास से युगान्त तक की प्रमुख वाणी रही जिसमें प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से भावोच्छवास प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना वैभव की वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जो देश काल गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा–आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावाद पड़ा। यह काव्यधारा 1918 ई० के आस–पास द्विवेदी युगीन नीरस, उपदेशात्मक इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखतः रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई। यह नई काव्य–धारा अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों तथा बंगला के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्यधारा के ढंग या उससे प्रभावित थी।

छायावाद में पिछले युगों की नितान्त वस्तुपरकता के प्रति गहरा विद्रोह छिपा था और अपने व्यक्तित्व की स्वीकृति के लिए खुला ऐलान थी और इस प्रतिक्रिया में उसकी अपनी वैयक्तिकता अपनी अन्तर्मुखी हो गयी कि कवि वस्तु जगत की नितान्त अवहेलना करके स्वप्नों और आशा के रंगीन चित्रों में अपने को भटकाता रहा। ऐसी दशा में जीवन के सत्य से साक्षात्कार न कर वह कल्पनाशील बन गया था। निश्चय ही, छायावाद की यह स्थिति बहुत दिनों तक सम्भव नहीं थी। जीवन की अस्वीकृतियों को गौरवान्वित करके, मानसिक कुण्ठाओं को छिपाकर कल्पना लोक के छायाभास और रहस्याभाव–वैभव में अपने आपको भुलाए रहना अधिक सम्भव नहीं था और सामाजिक भावनाओं के लिए अज्ञात अशरीरी आलम्बन का रहस्यात्मक आधार भी अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हो सका। परिणामस्वरूप काव्य में एक नया मोड़ स्वाभाविक था। इस नए काव्य के काव्य को भावजगत् के काल्पनिक कुहासे से निकाल कर जीवन की वास्तविकता तथा यथार्थ का दिग्दर्शन कराया। सन् 1936 ई० के आस–पास उसके पुरोधाओं ने ही उसके रश्मिबन्ध तोड़ डाले और जीवन के यथार्थ से कविता का साक्षात्कार कराया। आधुनिक कवि की भूमिका में पन्त ने लिखा– "छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा, क्योंकि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था, वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया।"

सचमुच 1936 ई० तक आते–आते छायावाद युगीन परिवेश और यथार्थ के साथ गति मिलाने में असमर्थ हो गया। यह हमारी नयी समस्याओं और परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सका। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा– "छायावाद की असामयिक मृत्यु का एक प्रमुख कारण यह है कि उसमें जीवन से सम्बन्धित किसी रचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव था। द्वितीय महायुद्ध के घुटन के दौरान छायावाद–रहस्यवाद के गीत अर्थहीन हो गए थे। छायावाद जीवन के उन तत्त्वों को आत्मसात्

नहीं कर सका जिनके कारण कोई भी साहित्य अधिक स्थायी हो पाता है जिन सूक्ष्म तन्तुओं से उसका निर्माण हुआ था वे संघर्षों के कठोर युग के उपयुक्त न थे। छायावाद वह रेशम था जिससे युद्ध तथा संकट के दिनों में सिपाहियों की वर्दी नहीं बन सकती थी।"

इसी बीच 1936 ई० तक आते–आते सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द के सहयोग से "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई। शिवदान सिंह चौहान ने सन् 1937 के मार्च के "विशाल भारत" में "प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता" शीर्षक लेख लिखा, जिसमें हिन्दी कवियों एवं लेखको को उन्होनें ललकारा "हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिए नहीं वरन् कला संसार को बदलने के लिए है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यकार का फर्ज है।" अब छायावादियों के पैर डगमगाए। सामने कई सैद्धान्तिक प्रश्न आ खड़े हुए, साहित्य किसलिए? स्वयं के लिए या दूसरों के लिए? साहित्य का अन्तिम प्रयोजन क्या है– आत्मतुष्टि या समाज कल्याण? इन सारे प्रश्नों ने छायावादी कवियों को भी आत्म अन्वेषण के लिए बाध्य किया। इस समय तक आते–आते छायावादी प्रवृत्तियाँ प्रायः ह्रासोन्मुखी हो चुकी थी। 1935–36 ई० तक आते–आते छायावाद वही नहीं रह गया जो 1916 या 1918 में था। प्रकृति प्रेम से जिसका आरम्भ हुआ था, अन्त तक जाते–जाते उसके प्रेम का प्रसार मानव–जीवन तक हो गया, जिस निराला ने "जूही की कली" के साथ "केलि" से काव्य आरम्भ किया था आगे चलकर 1935 तक जाते–जाते तुलसीदास की रत्नावली से मुक्त होकर देश के काल की चिन्ता करने निकल पड़े। जो प्रसाद पहले "आँसू" में ही डूबे रहे, उन्हीं को कुछ ही वर्षो बाद "आँसू" के द्वितीय संस्करण में अपनी पीड़ा को मंगलमयी ज्योति का रूप देना पड़ा। उन्होनें अपने आँसूओं को विश्व के आँसूओं से मिला दिया और मंगलकामना की। निजी आँसुओं के "निहार" में वन्दिनी रहने वाली महादेवी ने रश्मि के आलोक में जीवन की व्याप्ति का दर्शन किया और प्रखर ताप को झेलते हयु सान्धक्षणों तक जाते–जाते समाजव्यापी दुख की अनुभूति करने लगी।" इस प्रकार छायावादी कवि भी युग की माँग के अनुसार प्रगतिवादी रचना करने लगे। पन्त ने छायावाद का युगान्त घोषित किया प्रगतिवाद को युगवाणी के रूप में तुरन्त अपना लिया। देर–सवेर निराला और महादेवी ने भी अपनी–अपनी सीमाओं में इसे स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप कविता में पहली बार किसानों–विशेषतः मजूरों के गन्दे पैरों की धूल दिखायी पड़ी।

प्रगतिवाद

प्रगतिवाद का आन्दोलन सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह आन्दोलन था, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु–सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अगसर होने की प्रेरणा दी, किन्तु प्रगतिवाद ने यथार्थ

को सीमित और संकुचित परिधि में ही देखा, वह भी अपने रंगीन चश्मे से। एक राजनीतिक मन्तव्य के प्रचार मात्र का साधन बन इसने संकीर्णता का परिचय दिया। प्रगतिवादियों की दृष्टि एकांगी हो गयी। काव्य के नाम पर स्थूल इतिवृत्त और उपदेश का सर्जन होने लगा। इस तरह प्रगतिवादी कविता अपने आप में रूढ़ होने लगी और उसकी विषयवस्तु एक सीमित परिधि के भीतर चक्कर काटने लगी। प्रगतिवादी विशुद्ध रूप में मार्क्सवाद की गोद में जा बैठा और उसका उद्देश्य साहित्य न होकर रह गया। प्रगतिवाद मानव-मूल्यों के स्थान पर वर्गमूल्यों की चर्चा में व्यस्त हो गया। यही नहीं, मानव-मूल्यों की उपेक्षा करके प्रगतिवाद ने वर्ग-मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा की और यह देखने का प्रयास ही नही किया कि कला और कविता के क्षेत्र में इन तत्त्वों से परे भी कोई मूल्य है, जो काव्य के गुण और दोष निर्धारित करते हैं। काव्य के मूल तत्त्व हट जाने के कारण उनकी दृष्टि साम्प्रदायिक बनकर रह गयी और यहाँ तक की नव यथार्थ की पद्चाप उन्हें सुनायी ही न दी। उनकी यथार्थ के प्रति जो दृष्टि थी, उसका विवेचन करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा- "यथार्थ के प्रति उनकी दृष्टि क्या थी, यह तो उस समय और भी स्पष्ट हो जाता है जब केवल उसे नीति के रूप में मार्क्सवादी विचारधारा अथवा कम्युनिज्म को स्थापित करने में प्रयुक्त करते हैं। यथार्थ और मानव-विशिष्टता दो तत्त्व के रूप में उन्हें स्वीकार नहीं होते, उनके सामने तो कम्युनिस्ट नीति और उसके साथ यथार्थ की उपयोगिता (विशेषकर उस नीति को स्थापित करते के लिये) की ही समस्या प्रमुख है।" विषय वस्तु को इतना एकांगी और सीमित बना देने के फलस्वरूप प्रगतिवादी साहित्य जीवन की मूलधारा से ही विच्छिन्न हो गया और उसकी अपनी ही भूमि से प्रयोगवादी कविता के अंकुर फूट पड़े।

प्रयोगवाद

हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद का जन्म एक विशेष परिस्थिति में हुआ। प्रयोगवाद या प्रयोग की आवश्यकता साहित्य में उस समय होती है जब कविता की प्रेषणीयता इतनी अभिधापूर्ण हो जाती है कि उसमें कोई रस-विशेष नहीं मिल पाता अथवा कोई रागात्मक सहानुभूति नहीं मिल पाती। प्रयोग की सार्थकता सदैव इसमें ही निहित रहती है कि कवि एक रूढ़ि को त्यागकर नए स्तर पर रागात्मक सम्बन्धों को ढूँढ़ता है और यह प्रयास करता है कि वे माध्यम जो अपनी प्रेषणीयता नष्ट कर चुके है अथवा जो अत्यधिक अभिधात्मक हो गए हैं, उनके अतिरिक्त माध्यमों को स्थापित करें। हिन्दी में इस विशिष्ट विचारधारा के जन्म के कुछ कारण थे।

छायावाद नवीन भावनाओं का अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो गया था और प्रगतिवाद की अतिशय सामाजिकता ने व्यक्ति को एकदम निरर्थक बना दिया था, इतना ही नहीं प्रगतिवाद अपनी अतिशयता में नारेबाजी और मार्क्सवादी दृष्टि का पर्याय बनकर रह गया था। छायावाद और प्रगतिवाद जब नयी

भावभूमि को वाणी देने में असमर्थ प्रतीत होने लगे तक प्रयोगवाद युग की अनिवार्य चेतना के रूप में काव्य में उद्‌भूत हुआ।

"तारसप्तक" के प्रकाशन काल (1943 ई०) से प्रयोगवाद की शुरुआत मानी जाती है। यद्यपि "प्रयोगवाद" नाम से "तारसप्तक" के सम्पादक अज्ञेय सहमत नहीं थे और उन्होनें दूसरे सप्तक (1951 ई०) की भूमिका में इसका विरोध भी किया है- "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं है। न प्रयोग अपने आप में ईष्ट या साध्य है। अतः प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।" परन्तु जिस प्रकार छायावदियों के न चाहने पर भी "छायावाद" संज्ञा निरर्थक होकर भी हिन्दी पाठकों के बीच प्रचलित हो गयी उसी प्रकार "प्रयोगवाद" नाम भी चल पड़ा।

इन कवियों के सम्मुख वर्तमान युग की जटिल संवेदनाएँ थी। सम्पूर्ण जीवन तेजी से बदल रहा था, मशीनी सभ्यता और संस्कृति में पल्लवित होने वाला समाज अपने पूर्व समाज से सर्वथा भिन्न था। प्रगतिवाद तक आते-आते युग का दृष्टिकोण यथार्थमूलक मात्र हो सका वैज्ञानिक नहीं। निसन्देह आज के वैज्ञानिक युग में पूरा ताना-बाना उलट-पलट गया है। मानवीय सम्बन्ध मानव-मूल्य पहले की अपेक्षा अधिक जटिल, संकुल और अस्त-व्यस्त है। ऐसी स्थिति में एक नए साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। प्रयोगवाद अपने समर्थन में यह नहीं कहता कि उसका अभीष्ट एवं सिद्धि प्रयोगमात्र है, बल्कि उसका आग्रह है कि प्रयोग के माध्यम से ही आज की जटिल एवं अस्त-व्यस्त संवेदना की अभिव्यक्ति हो सकती है। प्रयोगशीलता की मूलप्रेरणा के सम्बन्ध में अज्ञेय ने कहा कि- "जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुंचाया जाय यह पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है, क्योंकि कवि यह अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व नहीं है।"

चूंकि छायावाद भाषा नवीन भाव-बोध को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं रह गयी थी, इसलिए प्रयोगवाद में बार-बार इस बात को लेकर पर्याप्त बहस हुई है। प्रयोगवादी कवियों को इस बात चिन्ता थी कि भाषा असमर्थ हो गयी है उपमान बासी पड़ गए है और मैले हो गए हैं। अतः शब्दों में नया अर्थ भरना है। इसी के साथ सम्प्रेषण का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। अज्ञेय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कहा है कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक छुआ नही गया, या जिनको अभेद्य मान लिया गया है। भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतो से अंको और सीधी-तिरछी लकीरों से छोटे-बड़े टाइप से सीधे या उल्टे अक्षरों से लोगों एवं स्थानों के नामों से अधूरे वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगाता कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठको तक अक्षुण पहुंचा सके। पूरी सफलता उसे नहीं मिली जहाँ वह पाठक के विचार सूत्रों को नहीं छू सका, वहाँ से उसे पागल प्रलापी समझा गया या अर्थ का अनर्थ पा लिया गया। बहुत से लोग इस बात को भूल

गए कि आधुनिक कवि जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है- भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।"

इस तरह से प्रयोगवाद कविता ने हिन्दी की अब तक की काव्य-वस्तु के क्षेत्र से आगे बढ़कर उसमें नयी क्रान्ति की है। जहाँ छायावादी काव्य-वस्तु सीमित थी और सौन्दर्य के एक ही पक्ष को ग्रहण करते हुए युग के यथार्थ से विमुख हो चली थी और प्रगतिवादी काव्य-वस्तु एक सीमित घेरे में बंधकर प्रचार मात्र का साधन बन कर रह गयी थी तथा जिसने समाज को अतिशय स्वीकृति देकर व्यक्ति को एकदम तिरस्कृत कर दिया था वहाँ प्रयोगवाद ने अपनी काव्य-वस्तु में व्यक्ति को अस्तित्व की प्रतिष्ठा कर नवीन युगीन यथार्थ को उसके सम्पूर्ण परिवेश के साथ स्वीकृत किया।

छठे दशक के प्रारम्भ के साथ ही प्रयोगवाद के अतिरिक्त उत्साह से मुक्ति पाकर हिन्दी कविता एक नयी दिशा में मुड़ी, जिसमें परम्परा को आत्मसात् करके स्वीकारने और स्वानुभूति की सघनता के दबाव में विवश होकर सहज आत्माभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति प्रमुख थी। इसी को "नयी कविता" कहा जाने लगा। नयी कविता के उन्मेष और वाद-रहित मानवीय जीवन-दृष्टि तथा विकसित एवं परिष्कृत सौन्दर्य बोध ने प्रयोगवाद की दुर्गति तक पहुँचाने या बिखर जाने से बचा लिया।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक कवि- 2 भूमिका पन्त पृ. 17
2. हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ. 15
3. छायावाद डॉ० नामवर सिंह पृ. 137-138
4. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ डॉ० नामवर सिंह, पृ. 71-72
5. नयी कविता के प्रतिमान- लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ. 115
6. दूसरा सप्तक स० अज्ञेय भूमिका
7. तारसप्तक सं० अज्ञेय पृ० 27 प्रथम संस्करण
8. तारसप्तक सं० अज्ञेय पृ० 270-71 प्रथम संस्करण

समानता के प्रबल समर्थक : भीम राव अम्बेडकर

डॉ० समरेन्द्र बहादुर शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग,
बी० आर० डी० पी०जी० कॉलेज
देवरिया

शोध-सारांश

इतिहास में ऐसे लोग होते हैं जो आम लोगों से अलग होकर समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। डॉ. भीम राव अम्बेडकर, जिन्हें प्यार से "बाबासाहेब" नाम से जाना जाता है, एक अद्वितीय व्यक्तित्व हैं जिन्होंने धर्म के दृढ़ समर्थकों को जन्म दिया है। उनका जीवन भेदभाव को दूर करने और वंचित समुदायों के अधिकारों की वकालत करने के लिए समर्पित था। इस लेख में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के प्रारंभिक जीवन, उनके सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष और भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार के रूप में उनके अनमोल योगदान का विश्लेषण किया गया है।

प्रारंभिक जीवन और शिक्षा: अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को एक महार (दलित) जाति में हुआ था, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से अछूत थी।[1] अम्बेडकर ने नीच जातियों द्वारा झेलने वाले व्यापक भेदभाव और अनकही कठिनाइयों को प्रत्यक्ष रूप से देखते हुए, भारतीय समाज को त्रस्त करने वाले सामाजिक अन्यायों की गहरी समझ विकसित की। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का बचपन विस्मृति और गरीबी से भरा था। उनकी पढ़ाई में मुश्किलों का सामना करना पड़ा, लेकिन वे स्कूल और विद्यार्थी संगठनों में सफल रहे। विदेशी विद्यार्थियों के साथ उन्होंने ब्रिटिश भारतीय सेवा में पढ़ाई की।

प्रचलित पूर्वाग्रहों के बावजूद, अम्बेडकर ने अकादमिक रूप से उत्कृष्ट प्रदर्शन किया और उल्लेखनीय दृढ़ संकल्प दिखाया। उन्होंने बॉम्बे विश्वविद्यालय और एल्फिंस्टन कॉलेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त की, फिर न्यूयॉर्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में आगे की पढ़ाई की। इन शैक्षिक गतिविधियों ने उन्हें दमनकारी जाति व्यवस्था को चुनौती देने और उत्पीड़ितों के अधिकारों के लिए लड़ने के बौद्धिक उपकरणों से लैस किया।

सामाजिक सुधार के प्रति अम्बेडकर की दृढ़ प्रतिबद्धता, न्याय और समानता में उनकी गहरी आस्था से प्रेरित थी। उन्होंने अपने जीवन भर जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया, जिसे उन्होंने भारतीय

समाज पर अभिशाप समझा था। उन्होंने दलितों के अधिकारों की वकालत की, जो पहले "अछूत" के रूप में जाना जाता था, जैसे शिक्षा, रोजगार और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करना। उन लोगों ने जातिवादी व्यवस्था को चुनौती दी और आर्थिक और समाजिक सुधार की मांग की। धर्म–निरपेक्षता का मुद्दा उठाया और सभी को समान मौका देने की मांग की।

1927 के महाड सत्याग्रह में उनकी भागीदारी अम्बेडकर की सबसे महत्वपूर्ण कोशिशों में से एक थी।[2] सत्याग्रह का लक्ष्य था दलितों को सार्वजनिक जल स्रोतों तक पहुँचने से वंचित करने की अन्यायपूर्ण प्रथाओं को चुनौती देना। प्रतीकात्मक रूप से दलितों के समान अधिकारों की मांग करते हुए, अंबेडकर ने महाड, महाराष्ट्र में चावदार टैंक तक एक जुलूस का नेतृत्व किया। इस साहसी कार्य ने देश भर में इस मुद्दे पर ध्यान दिया और अनगिनत लोगों को समानता की लड़ाई में शामिल होने का आह्वान किया।

1932 में, ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने सांप्रदायिक पुरस्कारों में ष्दलित वर्गोंष के लिए एक अलग निर्वाचक मंडल का गठन किया। राजनीतिक सक्रियता और पूना पैक्ट महात्मा गांधी ने अछूतों के लिए एक अलग निर्वाचक मंडल का घोर विरोध किया, क्योंकि वे डरते थे कि इस तरह की व्यवस्था हिंदू समुदाय को विभाजित कर देगी।[3] पूना की यरवदा सेंट्रल जेल में केद होने पर गांधी ने भोजन करने का विरोध किया। मदन मोहन मालवीय और पलवंकर बालू जैसे कांग्रेसी राजनेताओं और कार्यकर्ताओं ने अनशन के बाद यरवदा में अम्बेडकर और उनके समर्थकों के साथ संयुक्त बैठकें कीं।[4] 25 सितंबर 1932 को, हिंदुओं में दबे–कुचले वर्गों के नेता अम्बेडकर और अन्य हिंदुओं के नेता मदन मोहन मालवीय ने पूना पैक्ट नामक समझौते पर हस्ताक्षर किए। समझौते ने अनंतिम विधानसभाओं में दबे हुए वर्गों के लिए आरक्षित सीटें दीं। संधि ने दलितों को औपनिवेशिक सरकार द्वारा पहले प्रस्तावित सांप्रदायिक पुरस्कार में 71 के बजाय 148 सीटें दीं। हिंदुओं के बीच अछूतों को परिभाषित करने के लिए पाठ ने "डिप्रेस्ड क्लासेस" शब्द का इस्तेमाल किया, जिन्हें भारत अधिनियम 1935 और बाद में 1950 के भारतीय संविधान के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कहा गया।[5] पूरे समझौते में एकीकृत मतदाता सिद्धांत बनाया गया था, लेकिन अछूतों को प्राथमिक और माध्यमिक चुनावों में अपने स्वयं के उम्मीदवारों को चुनने की अनुमति दी गई। अम्बेडकर ने संविधान में सूचीबद्ध जातियों के अधिकारों की रक्षा करते हुए राजनीतिक सक्रियता दिखाई। भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय कायम करने के लिए उन्होंने निर्वाचन मंडलों की स्थापना की।

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता पर, नवनिर्वाचित प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अम्बेडकर को भारत के कानून मंत्री के डोमिनियन के रूप में काम करने के लिए कहा; उन्हें दो हफ्ते बाद भारत के भविष्य के गणतंत्र के लिए संविधान की मसौदा समिति का अध्यक्ष बनाया गया।

25 नवंबर 1949 को अम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने अंतिम भाषण में कहा, "जो श्रेय मुझे दिया गया है, वह वास्तव में मेरा नहीं है।" यह आंशिक रूप से सर बी. एन. राव, संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार, जिन्होंने मसौदा समिति के विचार के लिए संविधान का मजबूत मसौदा बनाया था। भारतीय संविधान नागरिकों को धर्म की स्वतंत्रता, अस्पृश्यता के उन्मूलन और सभी प्रकार के भेदभावों को गैरकानूनी घोषित करने सहित कई नागरिक स्वतंत्रता देता है। महिलाओं के व्यापक आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ने वाले मंत्रियों में से एक थे अम्बेडकर। उन्होंने विधानसभा को भी अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को सिविल सेवाओं, स्कूलों और कॉलेजों में नौकरी में आरक्षण देने के लिए प्रेरित किया। इन उपायों से भारत के सांसदों ने सामाजिक-आर्थिक असमानताओं और अवसरों की कमी को दूर करने की उम्मीद की थी।[7] 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा ने इसे अपनाया।

1953 में एक संसद सत्र के दौरान, अम्बेडकर ने कहा कि लोग हमेशा मुझसे कहते रहते हैं, "ओह, आप संविधान के निर्माता हैं।" मैं कहता हूँ कि मैं भाड़े का लेखक था। मैंने अपनी इच्छा के खिलाफ बहुत कुछ किया जो मुझे करने के लिए कहा गया था। "मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ कि मैं इसे जलाने वाला पहला व्यक्ति बनूंगा," अम्बेडकर ने कहा। मैं इसे नहीं कहना चाहिए। यह किसी के लिए अच्छा नहीं है।[8]

भारतीय संविधान का निर्माण अम्बेडकर ने किया था। वे गठन समिति के अध्यक्ष थे और संविधान संग्रह में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित न्यायपूर्ण संविधान उनके द्वारा बनाया गया था।

विरासत और प्रभावः एक सामाजिक-राजनीतिक सुधारक के रूप में अम्बेडकर की विरासत ने आज के भारत पर व्यापक प्रभाव डाला।[9] दुनिया भर में नेताओं और कार्यकर्ताओं की पीढ़ियां सामाजिक न्याय के लिए उनके अथक संघर्ष और निरंतर प्रतिबद्धता से प्रेरित हुई हैं। बंधुत्व, समानता और स्वतंत्रता के उनके सिद्धांतों ने भारतीय लोकाचार को मौलिक बना दिया है, जो न्यायपूर्ण समाज बनाने के प्रयासों को मार्गदर्शन करते हैं। बौद्ध धर्म में उनके परिवर्तन ने भारत और विदेशों में बौद्ध धर्म की आस्था को फिर से जगाया।[10] बाबासाहेब अम्बेडकर की प्रेरणा भारत में सकारात्मक कार्रवाई योजनाओं और नीतियों में दिखाई देती है, जिनका लक्ष्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों का उत्थान करना और सामाजिक असमानता को दूर करना था। उदाहरण के लिए, अम्बेडकर का विचार था कि ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों को अवसर और प्रतिनिधित्व देना चाहिए, जो आरक्षण प्रणाली का प्रत्यक्ष परिणाम है।

धर्म पर अम्बेडकर के आलोचनात्मक विचार

1935 में अंबेडकर ने कहा कि वे हिंदू के रूप में पैदा हुए, लेकिन हिंदू नहीं मरेंगे। उन्हें हिंदू धर्म को एक "दमनकारी धर्म" के रूप में देखा गया और दूसरे धर्मों में बदलाव करने की सोचने लगे।[11] अम्बेडकर ने एनिहिलेशन ऑफ कास्ट में कहा कि शास्त्रों की पवित्रता का विश्वास नष्ट करना और उनके अधिकार को नकारना ही एक सच्चा जातिविहीन समाज बनाने का एकमात्र स्थायी तरीका है।[12] अम्बेडकर हिंदू धार्मिक साहित्य और महाकाव्यों का गंभीर आलोचक था। डॉ० अम्बेडकर की मृत्यु के बाद, उनके कई लेखों को एकत्र करके एक पांडुलिपि बनाई गई और प्रकाशित की गई, जो देश भर में बड़े पैमाने पर प्रदर्शन और काउंटर प्रदर्शन हुए।[13] अम्बेडकर ने सोचा कि ईसाई धर्म अन्याय से लड़ने में असमर्थ था। उनका लेख था, "यह एक अकाट्य तथ्य है कि ईसाई धर्म संयुक्त राज्य अमेरिका में नीग्रो की गुलामी को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं था। ईसाइयों ने नीग्रो को स्वतंत्र करने के लिए एक गृहयुद्ध शुरू करने से इनकार कर दिया।[14] अम्बेडकर ने इस्लाम में भेदों की आलोचना करते हुए कहा कि यह एक करीबी निगम है और मुसलमानों और गैर–मुसलमानों के बीच जो भेद करता है, वह एक बहुत ही वास्तविक, बहुत सकारात्मक और बहुत अलग–थलग करने वाला भेद है।[15] उन्होंने गरीब लोगों को इस्लाम या ईसाई धर्म में बदलने का विरोध किया और कहा कि अगर वे इस्लाम में बदल जाते हैं तो "मुस्लिम प्रभुत्व का खतरा भी वास्तविक हो जाता है" और अगर वे ईसाई धर्म में बदल जाते हैं तो यह "देश पर ब्रिटेन की पकड़ को मजबूत करेगा।"

प्रारंभ में, अम्बेडकर ने सिख धर्म में बदलने का विचार किया था, लेकिन उन्हें पता चला कि ब्रिटिश सरकार अछूतों को संसदीय सीटों पर विशेषाधिकार नहीं देगी।

जब अम्बेडकर ने धर्म का महत्व समझा, तो वह बौद्ध धर्म अपनाया। उन्हें धर्म को सामाजिक आंदोलन के रूप में देखा गया और धर्म की स्वतंत्रता की मांग की। उन्होंने 16 अक्टूबर 1956 को मरने से कुछ सप्ताह पहले बौद्ध धर्म अपना लिया था।

आर्यन आक्रमण सिद्धांतः अम्बेडकर ने अपनी 1946 की पुस्तक हू वेयर द शूद्रस? में आर्य आक्रमण सिद्धांत को "इतना बेतुका था कि इसे बहुत पहले ही मर जाना चाहिए था" कहा।[16] अम्बेडकर ने शूद्रों को मूल रूप से "इंडो–आर्यन समाज में क्षत्रिय वर्ण का हिस्सा" के रूप में देखा, लेकिन ब्राह्मणों पर कई अत्याचारों के बाद वे सामाजिक रूप से अपमानित हो गए।[17] अरविन्द शर्मा कहते हैं कि अम्बेडकर ने आर्यन आक्रमण सिद्धांत में कुछ कमियां पाई, जो पश्चिमी विद्वानों ने बाद में स्वीकार कीं। मुख्य रूप से, अम्बेडकर ने आर्यों के भारत में आक्रमण सिद्धांत को राष्ट्रीय एकता और समानता के सिद्धांतों के खिलाफ खंडन किया। इतिहास में, उन्होंने इस वाद को तोड़ डाला और भारतीय लोगों को आत्मविश्वास और एकता की जरूरत बताई।

विभिन्न परिकल्पनाओं पर चर्चा करते हुए, अम्बेडकर ने पाया कि आर्य मातृभूमि भारत ही थी।

ऋग्वेद कहता है कि आर्य, दास और दस्यु धार्मिक समूहों का मुकाबला कर रहे थे, न कि अलग–अलग लोगों। (अम्बेडकर)

1956 में प्रकाशित अम्बेडकर के दो ग्रंथों, "बुद्ध या कार्ल मार्क्स" और "बौद्ध धर्म और साम्यवाद" में साम्यवाद पर उनके विचार व्यक्त किए गए थे।[19] उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धांत को स्वीकार किया कि गरीबी और उसके मुद्दों को जनता के कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के शोषण ने बनाया है। उसने शोषण को सिर्फ आर्थिक रूप से नहीं देखा, बल्कि यह मानते हुए कि शोषण के सांस्कृतिक पहलू आर्थिक शोषण से भी बुरे या बुरे हैं। उन्होंने आर्थिक संबंधों को भी मानव जीवन का एकमात्र महत्वपूर्ण हिस्सा नहीं समझा। साथ ही, उन्होंने देखा कि सर्वहारा क्रांति को प्राप्त करने के लिए कम्युनिस्ट हिंसा जैसे किसी भी उपाय का सहारा लेने को तैयार थे, हालांकि उन्होंने लोकतांत्रिक और शांतिपूर्ण उपायों को बदलाव के लिए सबसे अच्छा विकल्प माना। साथ ही, अम्बेडकर ने मार्क्सवादी विचारधारा का विरोध किया, जो संपत्ति के निजी स्वामित्व को समाप्त करता है और उत्पादन के सभी साधनों को नियंत्रित करता है: बाद की कार्रवाई को समाज की समस्याओं को हल करने में असमर्थ मानते हुए इसके अलावा, मार्क्सवाद की तरह, अम्बेडकर एक वर्गहीन समाज में विश्वास करते थे, लेकिन यह भी मानते थे कि राज्य अस्तित्व में रहेगा जब तक समाज रहेगा और विकास में सक्रिय होना चाहिए। 1950 के दशक में, उन्होंने बीबीसी को दिए एक साक्षात्कार में कहा कि वर्तमान उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था टूट जाएगी और उनका विचार था कि विकल्प "एक प्रकार का साम्यवाद है"।[20] निष्कर्ष: डॉ. बी. आर. समानता पुरस्कार विजेता अंबेडकर ने अपना जीवन वंचितों के अधिकारों की रक्षा करने और भेदभाव के खिलाफ लड़ने के लिए समर्पित कर दिया। एक "अछूत" के रूप में अपने प्रारंभिक अनुभवों से लेकर भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार के रूप में उनकी भूमिका तक, अम्बेडकर की यात्रा सामाजिक न्याय के प्रति दृढ़ संकल्प और अटूट प्रतिबद्धता से भरी हुई थी।

उनके अथक प्रयत्नों ने एक समावेशी और समतावादी भारत की नींव रखी, दमनकारी जाति व्यवस्था को खत्म कर दिया और राजनीतिक सशक्तिकरण का रास्ता प्रशस्त किया। आज, उनकी विरासत आशा की किरण है, जो पीढ़ियों को समानता, न्याय और सभी के मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है, चाहे उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि क्या हो। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के महत्वपूर्ण योगदान ने भारतीय इतिहास के पाठ्यक्रम को अविश्वसनीय रूप से बदल दिया है, जो हमें एक व्यक्ति की अनवरत खोज की परिवर्तनकारी शक्ति की याद दिलाता है जो समाज को अधिक न्यायपूर्ण और समान बनाने के लिए है।

संदर्भ सूची

1. “महार”, ब्रिटैनिका विश्वकोश, ब्रिटैनिका डॉट कॉम।
2. ‘डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर’, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना, आर्काइव 10 मई 2011।
3. "Ambekar vs Gandhi: A Part That Parted", Outlook, 20 August 2012, Archived from the original on 27 April 2015, Retrieved 29 April 2015.
4. Omvedt, Gail (2012), "A Part That Parted", Outlook India, The Outlook Group, Archived from the original on 12 August 2012, Retrieved 12 August 2012.
5. "Gandhi's Epic Fast" by Vasant G. Gandhi, Page 01.
6. Guha, R. (2013), Makers of Modern India, Harvard University Press, p. 292.
7. Sheth, D. L. (November 1987) "Reservations Policy Revisited", Economic and Political Weekly, 22 (46): 1957–1962.
8. Dhamija, Bhanu (13 April 2018), "Ambedkar Jayanti 2018: Why BR Ambedkar Didn't Like India's Constitution?", The Quint.
9. Joshi, Barbara R. (1986), Untouchable!: Voices of the Dalit Liberation Movement, Zed Books, pp. 11–14.
10. Naik, C. D (2003), "Buddhist Developments in East and West Since 1950: An Outline of World Buddhism and Ambedkarism Today in Nutshell", Thoughts and philosophy of Doctor B. R. Ambedkar, New Delhi: Sarup & Sons, p. 12.
11. Anupama P. Rao (1999), Undoing Untouchability?: Violence, Democracy, and Discourses of State in Maharashtra, 1932–1991, University of Michigan, pp. 49–74.
12. Guru, Gopal (1991), "Appropriating Ambedkar", Economic and Political Weekly, 26 (27/28): 1697–1699, ISSN 0012-9976.
13. "The Mahishasura debate: alternative traditions", The Hindu, 28 February 2016.
14. Ranganayakamma, For the Solution of the "Caste" Question, Buddha is Not Enough, Ambedkar is Not Enough Either, Marx is a Must, p. 404.
15. Anupama Roy; Michael Becker (1 June 2020), Dimensions of Constitutional Democracy: India and Germany, Springer Nature, p. 120.
16. Bryant, Edwin (2001), The Quest for the Origins of Vedic Culture, Oxford: Oxford University Press, pp. 50–51.
17. Bryant, Edwin, The Quest for the Origins of Vedic Culture, Oxford: Oxford University Press, 2001, pp. 50.
18. Sharma, Arvind (2005), "Dr. B. R. Ambedkar on the Aryan Invasion and the Emergence of the Caste System in India", J Am Acad Relig (September 2005) 73 (3): 849.
19. Kirby, Julian (2008), Ambedkar and the Indian Communists: The Absence of Conciliation (MA thesis), University of Manitoba.
20. Haq, Zia (26 April 2019), "Review: The Great March of Democracy edited by SY Quraishi", Hindustan Times.

PART – II

The Problems of Being Creative

***Dr. Sanjeev Kumar Bansal**
Assistant Professor of English,
Department of English,
Shri Varshney College, Aligarh, Uttar Pradesh, India
skb0071979@gmail.com, 88260- 56878
***Prof. Sharmila Saxena,**
Principal, Govt. Degree College,
Gadarpur, Udham Singh Nagar, Uttarakhand, India

Abstract

Writers seem to be free as they write about everything which they feel to write upon but indeed they are bound by certain laws and several restrictions have been imposed upon them directly or indirectly in various ways which disturbs them and obstruct the evolvement of the necessary ideas required for social welfare. Creativity is limitless and sometimes creatives forget their limits and write about everything which comes into their mind irrespective of the social norms and their usefulness. That is also one of the problems in their expressions. We have so many such examples. Sometimes world fails to understand their words and sometimes they write for, perhaps, another world. Writers of the post-modern age like Tasleema Nasreen and Salman Rushdie have suffered a lot due to their free expression of ideas. Various other writers of repute like John Keats, John Milton, Thomas Hardy, Munshi Premchand, John Galsworthy, DH Lawrence faced harsh criticism for their creative works.

This research paper expresses the need of the creative writings in the context of the various social-political problems and the problems in expressing the problems in the true manner. We see even our history has been distorted in the name of creativity. Everything in written form is not creativity. Creativity is something different, something that has sublimity in order to make the world a beautiful place to live on. Getting the certificate of creativity from any agency is not mandatory for adopting the profession of writers. So, now creativity and creative writers have become a vague term. In the age of knowledge explosion, it has now become really a herculean task to identify the true creative writers of the age who work for the welfare of the humanity at large. They are the great spectators and are able to see things of importance even without using their eyes which the normal person cannot see with their naked eyes.

Keywords: Creativity, Creamy-Layer, Article, Creative Process, Republic, Live-in-Relationships, The Mob, Saint John, Quality, Aparichit, Sevasadan, Lyrical Ballads, Tracts for the Times, Jude the Obscure, The Rainbow, Lady Chatterley's Lover, From the Four Winds-Stories & Sketches, Hunger, ChatGPT

Introduction

Expansion in the new rules and regulations and inordinate intervention of the state has hindered the true spirit of the authors. True creativity requires freedom of thought and an ambience befitting to materialize it. Literary spirit should not be repressed due to the petty subjective objectives. The writers of the post-modern era are facing so many conflicts in writing from the unfathomable depths of their hearts. People used to generalize them in other ways irrespective of the pious intentions of the authors for the social well-being. The writers do not feel free in writing about the sexual issues, third gender politics, prevailing corruption, review of caste-based reservations and formation of creamy layer in SC/ST categories, problems of general category, and the problems of the male category. Everyone feels pleasure and feel honoured in accelerating researches on the exploitation of the Dalits and on Feminism but nobody dares to conduct researches on the problems of the general category, male category which are also required likewise on the same patterns for the wide public interests. Everyone seems to favour socialism but nobody works for it through their actions. The creativity is something different thing or attribute as we see in the majority of the people. A Government employee fears in writing against the government or in writing against the prevailing system of politics. If he/she writes, he/she keeps in mind so many things to save himself/herself from the unnecessary pangs of the prosecution. However, the article 19(1) (a) of the Constitution of India states that, "All citizens shall have the right to freedom of speech and expression". The philosophy behind this Article lies in the Preamble of the Constitution, where a solemn resolve is made to secure to all its citizen, liberty of thought and expression. (Patna Law College)

What the Creativity is?

There are so many definitions of the creativity but the most useful definition is given by Wilson, Guilford and Christensen (1974) as follows, *"The creative process is any process by which something new is produced- an idea or an object including a new form or arrangement of old elements. The new creation must contribute to the solution of some problems."* Eyesenck and others (1972) define creativity as *"The creative children have the ability or the creativity is the ability to see new relationships, to produce unusual ideas and to deviate from traditional pattern*

of thinking."

The creative person thinks the whole world as his abode. He is not as narrow-minded as is expected on his side in the name of Nationalism. He behaves like cosmopolitans. We see that creativity and sociability are negatively correlated. They remain highly dependent on their right brain in the forms of sensory images, dreaming, feeling, visualization, and intuition. The creative person's approach suggests that the creative persons have divergent thinking. The creative persons use their subconscious mind in a better way. Due to his unique qualities, the creative workers are often misunderstood by the society. There are various theories describing creativity. Cesare Lombraso described creativity equivalent to insanity by citing the examples of many persons who were insane.

Literary Works/Films with Disputed Themes

Plato in the fourth book of his *'Republic'* states the sources of happiness in the model state. He in his fifth book of the *'Republic'* states that no work would be reserved for male and female separately and stresses on *'Live-in-relationships'* which are quite controversial and are a topic of research in the modern times.

The play *'The Mob'* authored by John Galsworthy and the play *'Saint John'* authored by GB Shaw are some of the important plays which try to show that idealism is something which works for the welfare of the people at a very large scale but people are so much narrow minded that they could not understand the thinking and philosophy of the protagonists and they have burnt Saint John without any solid reason. In the play *'The Mob',* we observe the tragedy with the creative person like Stephen More. "His plays are also filled up with the portrayal of the Quixotic heroes like Stephen More, an M.P. and Under Secretary of the state, a most quixotic hero of his plays, in his play *'The Mob'* who thinks that *'right is might'.* His two brothers are at the front and his father was a General and had served his country for 50 years. His wife's (Katherine's) uncle was in church. Olive is their daughter. Perhaps this play has been modelled on the Boer War. In one of his speech, he says that he prefers to fight someone of his own size and revolts against the initiation of war by his strong country against some neighbouring weak country. The mob misunderstands him and declares him traitor and hence kills him. In one of his short stories entitled *'Quality',* he portrayed an idealistic shoemaker who used to make only qualitative shoes and died of hunger on account of his idealism." (Kumar 23)

We regret to say that the society in which we live is double-standard society which have been portrayed in various movies (e.g. *Aparichit*) and other works but it's quite strange that these works which work as a true mirror to the society had failed miserably. Due to the dual

approach of the society, creatives face various types of conflicts such as Approach- Approach Conflicts, Avoidance- Avoidance Conflicts, Approach- Avoidance Conflicts, Double Approach-Avoidance Conflicts.

We see that even the great writers like Munshi Premchand were rejected by the film industry as they could not find themselves suitable in meeting out the needs of the film viewers. "He was disappointed to see the film version of his novel *Sevasadan* as it was disgraceful and exploited the ideal sentiments of a man through the insertion of naked or semi–naked and obscene scenes and blood–curdling and violent rape scenes. Ultimately, he concluded that he was just wasting his life at Bombay." (Kumar 45). We see that the great creatives never compromise with their principles whatever the situations may be as they don't work for their vested interests but for the interests of the public at large. That's why they even embrace the failures with their open arms without any kind of hesitation. They know the after-effects of the compromises. But it is the great irony that the public cannot understand those creatives who are working even for their welfare.

We know that Christopher Marlowe (1564-1593) is known as the *'wild genius'* or *'the most reckless spirit'* only due to his creative tendencies. Thomas Greene labelled William Shakespeare as *'An upstart crow'.* In 1597, Ben Jonson gets imprisoned for his share in Nashe's seditious satire and once again some years later for his part in Eastward Hoe. In 1598, Ben Jonson killed a fellow actor in a duel. From one of the comments of William Blake on John Milton, we see that he criticised John Milton by saying that he was of the devil's party without knowing it. We see that during restoration period under the reign of Charles II, the Puritans like John Milton were ill-treated by the opponents for having pious views. We observe that TS Eliot criticised William Wordsworth for not practising his own theory in his own poems. We know that ST Coleridge suffered in his matrimonial affairs due to his passion for Pantisocracy. ST Coleridge had married a common woman Sarah Fricker, the sister-in-law of Robert Southey. His had suffered a lot of the problems and consequently his married life failed miserably. He had written about his problems in his *'Ode to Dejection'.* He was an opium taker. We see his *'Kubla Khan'* was left incomplete as he was interrupted by a person from Porlock.

We know that William Wordsworth was of the moody and violent temper and his *'Lyrical Ballads'* was not well received by the intellectuals of that time as it was the transitional period and consequently he had to write *Preface* to the second edition of his *Lyrical Ballads* in 1800 in order to let them understand his philosophy. We have seen that even the major poet of the Romantic period PB Shelley was expelled from the University for having written a pamphlet on Atheism. We observe that Matthew Arnold criticises Shelley as an ineffectual angel. We

see Thomas Love Peacock labelled the poets as the *'semi-barbarians in a civilized community'.* Creativity don't care for the culture and traditions. Creative person don't ever write to please others but he/she writes just to satisfy his/her inner urges irrespective of the consequences of their writings. When we read History of the British Literature, we come to know that the cause of the death of one of the major romantic poet John Keats was the severe criticism of his works in The Quarterly Review and Blackwood's magazine. Creative persons are very much sensitive in nature by nature. They are really very delicate and needs to be handle with care. We see the miserable married life of William Hazlitt. He commented about wife, *"A Beautiful Mask! I know thee!"* He said about the cause of the success of Charles Lamb that he had succeeded not by confirming but by opposing the spirit of the age. We see AL Tennyson's frank poetic remark on the roles of man and woman when he says, Man for the field, woman for the hearth;.... We see that a Protestant John Henry Newman's (1801- 1890) Tracts for the Times, Tract No. 90 had raised a storm against him in the literary circles and he was compelled to join Roman Catholic Church to prove his innocence.

As far as the novels of Thomas Hardy are concerned, we observe that one of his novels *'Jude the Obscure'* (1896) was not well received by the public for its frank treatment of sex. Hardy even gave up his novel writing afterwards and decided to take refuge in writing poetry again. It was proved quite a controversial novel which received hostile reception. Hardy unfolded his heart in the preface to the 1912 edition *'burnt by a Bishop- probably in his despair at not being able to burn me'.* This is the story of Jude Fawley, Arabella Donn and Sue Bridehead.

We observe that DH Lawrence's novel *'The Rainbow'* got banned in England due to its offensiveness. His one other such novel is *'Lady Chatterley's Lover'* which is known for its malignity and offensiveness. It seems that creativity is something beyond social norms and it knew no bounds. Social norms are set by humans and the society whereas creativity is the asset gifted by the Almighty to us.

For one of his works entitled *"From the Four Winds- Stories & Sketches"* John Galsworthy commented, *"Burn it & you will oblige me."* We come across a character Joan, a French girl in the play *'Saint Joan'* authored by GB Shaw which is also a type of creatives who works for the betterment of her country but it is ironical that she was taken as a witch and burnt by the leaders of her own country for whose betterment she was working. Creativity is not something in written form, it may also be in oral forms. But, later on French realise their mistakes in burning Saint Joan and canonised her in the Christian Church as a Saint. GB Shaw successfully portrayed the problems of such kind of creatives who were quite idealistic at their hearts but faced unexpected situations due to the short-sightedness of the people by which they were surrounded.

If one wants to see the heights of creativity in poetry, he/she can read the poems of Kamala Das which are quite confessional in nature without any shame and fear she writes about sex even about Lesbians relationships without fearing from social norms. She is known for her fearless writings. Jayant Mahapatra's poem *'Hunger'* is also one of the poems that has been written with full creative freedom. However, it is not liked by most of the readers due to the expression of its bitter truth.

Challenges for Creative Writers

We know that so many books of the great writers of the past had been burnt by the authorities who were in power that time because the writers tried to expose the prevailing hypocrisy. The situation in present has not been changed. More or less, it is still the same. Still the question hovers over my mind- Are the Writers Really Free? On the other hand, we observe that advancements in the field of Artificial Intelligence in the form of ChatGPT is quite adamant to replace our creatives with their machines. This is another big challenge for the humanity. If used wisely, ChatGpt may prove fruitful for the advancement of our civilization.

Suggestion for Further Researches

On the basis of their experiences, some people believe and used to say that using intoxicants increases creativity which is also another area for research. We see so many writers were addicted to opium, wine and other intoxicants and have even written masterpieces. However, we don't believe in this logic. Creativity is something gifted by God which does not depend on the use of intoxicants for its expression. Prospective researchers may explore the correlation between creativity and the use of the intoxicants by some of the major writers.

Conclusion

Sometimes unnecessary problems arise due to copyright acts and plagiarism policies. As far as I remember a comment by the court that Copyright Acts are not God, those acts are not all in all and sometimes we must have to use our discretion in some cases. We cannot confine the creativity within the framework of certain rules. We must have to rethink and redefine creativity with the changing society and changing social norms. We must have to give sufficient freedom for the creative writers to let them express whatever they want to express. In order to promote creative works and to enrich the society with the experiences of the intellectuals working in the topmost hierarchy of our education system, our governments must have to assign

marks in API Scale for the Assistant/Associate Professors for their creative works to let them increase their API scores. The people must free themselves from various biases, prejudices and religious bigotries to think like cosmopolitans and philanthropists.

References

1. https://englishfi.com/galsworthy-and-his-famous-literary-works/
2. https://ksboxoffice.com/anniyan-aparichit-2005-movie-box-office-collection-budget-and-facts/south-box-office-collection/
3. https://time.com/6238284/lady-chatterleys-lover-history-censorship/#:~:text=It%20soon%20became%20infamous%20for,portrayal%20of%20female%20sexual%20pleasure.
4. https://www.britannica.com/topic/The-Rainbow
5. https://www.eng-literature.com/2020/02/critical-analysis-of-poem-hunger-by-jayanta-mahapatra.html
6. https://www.forbes.com/advisor/in/business/software/what-is-chatgpt/
7. https://www.g2.com/products/chatgpt/reviews
8. https://www.goodreads.com/book/show/41801990-soje-watan
9. https://www.hindustantimes.com/india-news/taslima-nasreen-alleges-her-facebook-account-banned-for-a-week-101635744518362-amp.html?utm_source=whatsapp&utm_medium=social&utm_campaign=ht_AMP
10. https://www.indiatoday.in/fyi/story/find-out-8-books-you-cannot-read-in-india-274868-2015-11-29
11. https://www.moneycontrol.com/news/trends/author-taslima-nasreen-says-facebook-suspended-her-account-for-telling-the-truth-7661151.html
12. http://www.patnalawcollege.ac.in/notice/88274-e_content-_art_19.pdf
13. https://www.quora.com/What-is-your-review-of-The-Republic-Plato
14. https://www.taslimanasrin.com/banned-books/
15. https://zeenews.india.com/hindi/world/video/bangladesh-violence-man-who-placed-quran-at-durga-puja-pandal-for-inciting-communal-violence-identified/1012477
16. Kumar, Sanjeev. *Tragedy of Idealism in the Select Novels of John Galsworthy and Munshi Premchand: A Comparative Study.* Kumaun University, Nainital, Uttarakhand. 2022.

Vol. XIX [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2022, ISSN: 0970-1745

Reform in United Nation Organisation: Especially Security Council

Pritam Kumar
Assistant Professor
Department of Defence Strategic Studies
Shri Varshney College, Aligarh

There are more shared global problems and threats today than 75 years ago, when the UN. Charter was signed. We can make progress only by addressing all these threats and problems at once. Development and security are connected and linked to human rights and the rule of law. The stakes are high, and a reformed and strengthened UN. is a high priority.

India, Japan, Germany and Brazil kill have a tough time pushing their draft resolution on UN. Security Council reform through.

The United Nation is as association of sovereign states, which agreed, when they ratified the charter. It is a form in which all the world's people can came together to find common solutions to their common problem and, also an instrument with which to pursue those solution.[1]

There are surely more shared global problems and threats today, or any way not fever, than when the U.N. was founded. Among the most worrying are the proliferation of terrorist groups and weapons of mass destruction and the danger that the latter will fall into the hands of the former. Those are very serious threats to people in rich and poor countries alike. But the threats that seem most immediate to many people in poor countries are those of poverty, disease, environmental degradation, bad government, civil conflict, and in some case-Darfur inevitably springs to mind the use of rape, pillage and mass murder to drive whole populations from their houses.[2]

We can only make progress if we address all these threats at once. No nation can reasonably expect cooperation on the things that matter to it most, unless it is prepared in return to help others with their priorities. And, as the U.N.'s high-level reform panel pointed out, the deferent kinds of threats are closely interconnected. Development and security are connected and, both in turn are linked to human rights and the rule of law. The stakes could hardly be higher. The opportunity to forge of common response to common threats may not soon recur. It is in that context, and for that reason, that a reformed and strengthened U.N. is so badly needed.[3]

Reformation of United Nations:

On the 60th anniversary of the signing of the United Nations Charter in 1945, debate about "reform" of the U.N. has been raging almost from that moment on. This is because idealism and aspiration for the U.N. have always outstripped its actual performance. Too often, we have failed to live up to the world's expectations.[4]

- All of us want to make the U.N.'s management more transparent and accountable and its oversight mechanisms stranger and more independent.
- All of us would like the General assembly to streamline its agenda and committee structure, so that time and resources are devoted to the burning issue of the day rather than to implementing resolutions passed years ago in a different political context.
- All of us are eager to make the U.N.'s human rights machinery more credible and more authoritive, notably by replacing the present commission on Human Rights with a Human Rights Council. Whose member would set an example by applying the standards they are charged to uphold.[5]
- All of us would like to see a peace building commission created with in the U.N. to coordinate and sustain the work of helping counties make the transition from war to peace-so that we do not repeat the dangerous relapse into anarchy in Haiti, as well as several African countries.[6]
- All of us want to impose stricter standards of conduct on U.N. peacekeeping mission, especially to put an end to sexual abuse and exploitation.[7]

KOFI ANNAN'S AGENDA OF U.N. REFORM	
Key Proposals	**Opposed By**
• Hike foreign aid by rich countries to 0.7 percent of GDP by 2015 • Duty-free/quota-free access to all export from least developed countries. • Define terrorism as, inter alias, any ac-tion that kills or injures civilians • Stringent IAEA verification of nuclear plants through adoption of Additional Protocol. • Restraints on Uranium enrichment, plu-tonium separation for peaceful uses. • Support U.S. Led Proliferations security initiative to intercept ships on high seas. • Adopt Security Council resolution on condition under which use of force is allowed. • Support International Criminal Court.	United State and most western countries outside of Scandinavia and Benelux. United States. Most West Asian countries, fearing dilution of right to resist Israeli occupation. India, Pakistan Israel. Mainly Iran, Brazil, Algeria, but also Germany, Japan, India, Pakistan. China, Iran, North Korea, Malaysia Indonesia. United States, Britain India, United States, China India (Torture convention), U.S. (Geneava Convention Additional Protocols).
• All countries Should sign/ratify Interna-tional treaties relating to protection of civilians. • Embrace'e 'emerging norm' on Collec-tive responsibility to protect and be ready to intervene.	Countries concerned about sovereignty, double standards.

Thought the formal debate on the expansion of Security Council membership began in 1997 with the proposal for the induction of five new permanent members without Veto by Razali Is mail - Who was president or the General Assembly at the time. It is only with Mr. Annan's appointment of the High-Level Panel on Threats. Challenges and change in 2004 that the drive for expansion has moved into top gear. For the expansion of permanent membership of the U.N. Security Council, two proposals are proposed. Both of which increase the size of the Security Council from 15 to 24.8

Model A :- It induct Six new Permanent Members- tow each from Asia and Africa, One each from Europe and Latin America - and three new non- permanent member. G-4 Nations (India, Japan, Germany and Brazil) and South Africa are the big supporter but Italy, Pakistan, Mexico, South Korea and other clam to have brought together more than 40 Countries under their 'Uniting for Consensus' banners in opposition while China and U.S. are the subtle opponents of Model A.

Model B :- It Induct eight' Semi- permanent members with a renewable term of four years and one new non-Permanent member. All those countries opposed to Model A are baking Model B but the G-4 Nations are against the Model B.

Both the draft of a frame work resolution on Security Council reform and an ambitious timetable for the United Nation General Assembly to vote on it, India, Japan Germany and Brazil have taken their quest for permanent membership of the world body's highest organ to a point of no return. So long as the discussion on reform remained confined to the theoretical front, the countries concerned could afford to be expansive in their ambitious.

G-4 Draft :- The draft framework resolution commits the G-4, as the four aspirants call themselves, to seeking six new permanent seats on the Security Council. The Council's size is to be increased from 15 to 25. The new permanent members are to be chosen on the basis of two each from Asia and Africa, one from Latin America/Caribbean, and one from among draft calls for increasing the number of non-permanent members by four, up from the present 10, on the basis of one each from Africa, Asia, Latin America/Caribbean, and East Europe. The inclusion of an additional seat for East Europe was proposed by Germany, which felt this was the only way to win the backing on the 20-odd states in that region.

The G-4s draft of reform envisaged differs in two respects from 'Model A' and 'Model B'. Both models had envisaged an increase in membership of the Security council to 24, one less than the G-4 draft's 25. More significantly, the G-4 resolution calls for the right to block resolution. Under the sub-head 'Veto', it states "The new permanent members should have the same responsible and obligations as the current permanent members."

G-4 is prepared to be flexible on the Veto front. The 'Talking Points' distributed by Germany to U.N. members along with the draft resolution say the question of veto "should not be a hindrance to Security Council reform." And in an attempt to convince the U.S. that the Security Council expansion will not reduce the body's capacity to take decisions that Washington might want, the G-4 draft also proposes to reduce the percentage of affirmative votes required to pass a resolution from the present 1 out of 15 (60 percent) to 14 out of 25 (56 percent).

Clever Voting Method - The draft envisages a two stage election procedure First, the framework resolution must be passed by two thirds the U.N. General Assembly that's, 127 countries. Within a yet to be specified number of days following the adoption of the resolution, "interested states" must "submit their" candidatures to the President of the UNGA. All 191 countries will chose six state by secret ballot to became permanent member of the Security Council in conformity with the geographical pattern already undirected. The G-4 draft also stipulates that if the number of states having obtained the required majority falls short of the number of seats allocated for permanent membership, new rounds of bellofing will be conducted for the remaining seats, provided all ballots shall be restricted to candidates (already registered), until six states obtain the required majority to occupy the six seats.[10]

The procedure envisaged is ingenious on two counts. Multiple rounds mean the G-4 nations do not compete against one another; and by restricting candidates to those registered within a fixed time frame, the G-4 protects itself against a regional dark horse emerging in the event of, say, one or more of the group's nations failing to win a two thirds majority despite several rounds of balloting.[11] It is only after the procedure is completed that s comprehensive Charter-ame-nding resolution, incorporating the changes already voted on, will be submitted for another vote in accordance with Article 108 of the U.N. Charter. This required that the changes by adopted by a two-thirds majority and subsequently ratified by two-third of U.N. members including all the existing permanent members of the security Council. The Chorter Articles proposed to be amended are 27(2) and (3) and 109(1) (on voting procedure), through the G-4 draft, curiously, forgets to mention Article 23, where the names of the five permanent member are listed.[12]

By staggering the Process reforms in this manner, the G-4 hopes to present the five permanent members (the P-5) with a fait accompli that they must either accept or reject in toto. If China want to veto Japanese permanent membership, for example, it will have to reject the entire package and run the risk of alienating not just Japan but the other five newly elected permanent member as well. Similarly, the U.S., which favours only the inclusion of Japan, will not be able to cherry pick; it will have to accept all six as permanent members. Japanese

officials take heart from what happened in 1963, when membership of the security council was expeuded from 11 to 15. Only China (whose seat was held by Taiwan) among the P-5 Voted in favour of the UNGA resolution calling for expansion. France and the Soviet Union voted against (the Soviet position was that there should be no change in the charter until the Chinese seat went to the Peoples Republic), while Britain and the U.S. abstained. However, all five eventually went on to rectify the Charter amendment.

The Hunt For 127 - But while ratification by the P-5 is the find hurdle, the G-4 will not find the earlier stages smooth sailing. Even on procedural grounds, there are likely to be objections with some arguing that the framework resolution be ratified by the P-5 first. The Intalions are already asking how they can choose countries to till seats that do not legally exist. Assuming the UNGA president allows the G-4 procedure, winning the required 127 votes is going to be a tall order indeed. Even if one includes all 53 African countries as supporters, the African Union adopted the 'Ezulwini Consensus' demanding that an enlarged security Council include two veto welding permanent members from Africa- the number of countries with a strong preference for the G-4 resolution does not exceed 60. Germany welds influence among the East Europeans, but so does Washington. Latin American and Caribbean states do not find G-4 proposal attractive and there is strong opposition in parts of West Europe as well. Japan's influence in Asia's negative, and in many world capitals the joke is that a Japanese berth on the UNSC will only increase Washington's vote from two (U.S. and U.K.) to three.[13]

What is also perlexing is the G-4's insistence on the veto rather than a demand her its abolition. Since both outcomes are equally unacceptable to the P-5, it could be better for the G-4 to incorporate, at least initially, a demand that has widespread international support so that the proposed expansion contributes to the democratisation of the world body. Strengthening the role of the General Assembly should also be part of the reform plan. Even now, it is not a toothless body. Last year, for example, the UNGA over rode the U.S. veto in the Security Council by referring Israel's illegal war in the Occupied Territories to the International Court of Justice for an advisory opinion. For Japan and Germany the urgency of the current campaign is understandable. Both countries have an ageing population and economics whose relative strength in the world though impressive is nevertheless on the decline. If Tokyo and Berlin miss the bus they can forget about permanent membership of the UNSC for all time to come. For India and Brazil how ever, the future is not so bleak. Failure now will bring a contain loss of face, but there will come a time when the world comes knocking on their doors.1[4]

References

1. Kofi A. Annan, "Reforming and strengthening the United Nations" The Hindu June 25, 2005.
2. Siddharth Varadarajan, "Security Council reform: a bridge too far?" The Hindu May 28, 2005.
3. Siddharth Varadarajan, "India and the problem of U.N. reform" The Hindu, April 26, 2005.
4. John Cherian, "A long way to the high table" Frontline, September 9, 2005, P-50
5. P.S. Suryanardyand, "Jakarta warns against forcing U.N. reforms," The Hindu, July 7, 2005.
6. The Hindu, July, 6, 2005, The Hindu, June 29 2005
7. Vladimir Radyuhin, "China, Russia back India for Security Council seat" The Hindu June 3, 2005
8. Siddharth Varadarajan, "G-4 favours U.N. vote" around July 20, The Hindu July 11, 2005.
9. The Hindu, May 27, 2005.
10. Vladimir Radyahim, "Russia ambivalent on U.N. reform" The Hindu, June 27, 2005.
11. Joel Brindley, "U.S. resists expanding U.N. veto power" The Hindu, May 16, 2005.
12. Hasan Suroor, "G-4, African Union resolve differences" The Hindu, July 27, 2005.
13. Amit Baruah, "U.N. gives active support" The Hindu, July 2, 2005.
14. Amit Barua, "Russia Want widest possible agreements on U.N. security Council expansion" The Hindu, July 21, 2005.

Predominant Role of Rural Production and Consumption Process in Developing Indian Economy

Dr Gunjan Agrawal
Associate Professor, Department of Commerce
S.V.(PG) College, Aligarh

Abstract

Rural people have purchasing power, they are aware about branded products and they are loyal too, the need is of right positioning and right marketing strategy. This is what ITC has done for targeting rural market, and no doubt, that they are the market leader of this segment. Before a decade, these were the common statements when discussing about rural market, but now a days these are meaningless. Many companies and management gurus has proved it myths, as Mr. C. K. Prahalad said that, "It is the bottom of the pyramid." "Villagers do not purchase branded products! They do not have sound purchasing power! They are illiterate! They are not aware about, what new is going in the market! etc. etc......"Though his concern was on below poverty line people, but as we know most of such people resists in rural areas of India. This research paper is an approach to high light what ITC has done to become a market leader of Indian rural market. Through this paper we are focusing over myths about rural market, we are also focusing on the gap between company's strategy and expectations of rural people from organized retailers.

Key Words: Rural Market, Purchasing Power , Market strategies.

Introduction

Indian agricultural industry has been growing at a tremendous pace in the last few decades. The rural areas are consuming a large number of industrial and urban manufactured products.

The rural agricultural production and consumption process plays a predominant role in developing the Indian economy. This is the major reason that for quite some time now, the lure of rural India has been the subject of animated discussion in corporate suites. With urban markets getting saturated for several categories of consumer goods and with rising rural incomes,

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

marketing executives are fanning out and discovering the strengths of the large rural markets as they try to enlarge their markets. Today, the idea has grown out of its infancy and dominates discussions in any corporate boardroom strategy session. Adi Godrej, chairman of the Godrej group that is in a range of businesses from real estate and personal care to agri-foods, has no hesitation proclaiming, it is a myth that rural consumers are not brand and quality conscious. A survey by the National Council for Applied Economic Research (NCAER), India's premier economic research entity, recently confirmed that rise in rural incomes is keeping pace with urban incomes. From 55 to 58 per cent of the average urban income in 2014-15, the average rural income has gone up to 63 to 64 per cent by 2016-17 and touched almost 66 per cent in 2018-19. There are various other reasons why every industry is taking a very serious look at rural market. Few of the reasons, we are mentioning here:

- About 285 million live in urban India whereas 742 million reside in rural areas, constituting 72% of India's population resides in its 6,00,000 villages. This number itself speaks volumes about the immense untapped potential of the rural market.
- The number of middle income and high income households in rural India is expected to grow from 80 million to 211 million by 2023 while urban India is expected to grow from 46 million to 59 million.
- Size of rural market is estimated to be 42million households and rural market has been growing at 5 times the pace of the urban market.
- More rural development initiatives by the Govt.
- Increasing agriculture productivity leading to growth of rural disposable income.
- Lowering of difference between taste of urban and rural customers.
- Growing infrastructure- thanks to Govt. initiatives.
- Setting up of channels like e-choupals by companies like ITC.

These facts and figures are not totally unknown to Indian and global players. Hence many of them have started entering or have made their intentions clear regarding their entry in to the Indian rural market.

2. Gap Analysis

The rural market in India is not a separate entity in itself and it is highly influenced by sociological and behavioral factors operating in the country. Despite the reality that the rural population in India accounts for around 742 million which is exactly 72.3% of the total

population, and a large number of misconceptions holding back the organizations from entering it, the fact of the matter is that rural market poses certain serious challenges in front of the corporate that are willing to enter these markets. Some of the important challenges are:

2.1. Companies find it difficult to do Promotional activities due to poor infrastructure: according to a recent study of planning commission, only three fifths of the nearly 6lakh villages in India are known to be connected by roads. This creates problems for the organized retail as transporting products to the remaining outlets becomes difficult & costly.

Secondly, this nearly make impossible for majority of the targeted rural consumers, who are spread within a radius of 15-20Kms, to reach the outlet during a substantial part of the year. Nearly 63% of all rural households in India do not have electricity and those which are electrified; there is a tremendous shortage of power supply in them. Thus it is quite common for rural areas to have 10-15 hours of blackouts every day. As the promotion of most of the products in one way or the other is dependent on electricity, this creates serious problems for them. Additional to it is the fact that illiteracy still is a major impediment in rural areas as a result print media has a limited scope of exposure in the hinterland.

2.2 Unique consumer behavior: Rural consumer as compared to their urban counterparts has very unique and erratic buying behavior. Most of the rural consumers do not readily take initiatives of gathering information regarding the new development in the market. They have presumptions regarding the showrooms, and they do not feel like going to the showroom to cross check the information. The survey showed that almost all the rural consumers have a prejudice that the products in the showroom are bound to be expensive.

2.3. Distance and location of nearby towns: Most of the retail organizations operating in the rural area are usually meant to serve a market of at least 15-20Kms in nearby areas in order to be substantially profitable. But it was found that many times towns are also located within the same radius. These towns usually provide for almost all the demands of an average rural consumer at a pretty reasonable rate. Now when they know that they are in competition with big players, they are becoming more cautious about the quality they provide. Hence the customers do not find it wise to travel 15Kms extra to the retail store when they can get their needs met in the market of a town merely 5Ks away from their village.

2.4. A closed society: Rural market is still a remarkable closed society with very stringent rules, cultural boundations, serious trust issues, and a very evident resistance & inertia towards change, which is more dependent upon a day today faith of the buyers & sellers on each other. One of the major problems faced by the organized retail is of high employee turnover. This costs them clearly in sales, as the consumer performs transactions on personal faith and confidence. So when a consumer returns to a storeroom and keeps on seeing new faces every month, it becomes difficult for him to relate with them.

2.5. Virtually inaccessible consumers: Unlike their urban counterparts, the rural male consumers most of whom are farmers or labourers in the field move out of the residing area of villages to work in the far flung field & hence are hardly exposed to the promotional activities that are by immense efforts able to make it into the hinterland. Hence these target audience more than often remains untouched & unknown to the promotions being taken out by the retail organizations. This lack of exposure further leads to lack of sales instead.

2.6. Habit of credit purchase: Most of the transactions in rural India are still based on credit although most of the times it is not by requirement but by habit. The customers usually pay their dues to the unorganized retailers at the end of the month or at the completion of the harvest even if it means paying interest on their purchases. This practice cannot be accepted by the organized retailers simply by the accepted by the virtue of their framework. This results in the form of a major hindrance in converting the rural consumers to the organized retail consumers.

3. What rural people want ?(Strategies that companies can adapt):

Although the above stated challenges are formidable but it is not that they cannot be overcome. The most interesting aspect is that the strategies which could be employed for overcoming them are pretty effective and at the same time very simple & very obvious.

3.1. Accept their culture & values: Festivals like Janmashtami, Maha shivratri, Dusshera, Makar sankranti etc. which are not so popular in urban areas, are celebrated with a lot of vigour in rural areas. In fact many of these festivals are of more than a day's duration with lots of events spread throughout the festive period, for example- Dangals, kabbadi, bullock cart races, mela etc. During these events, people from the nearby villages come to a central place where they can be targeted for sale of products. Sponsorships of such events can provide massive exposure with less expenditure as these events although provide recreation to rural customer but are organized at small scale and hence even a small investment can provide a much required grandeur to these events & exposure to the organization.

3.2. Offer products in small packs: low priced products can be more successful in rural market because of the low purchasing power of rural customer.

3.3. Be a friend of them: these firms should hire agronomists and experts to carry out workshops regarding the crops, their quality, technology and fair prices. These agronomists/experts should also regularly visit these farmers regarding their day to day problems and requirements. Such practices will lead towards the development of strong and powerful bonds between the organization and the potential customers.

3.4. Promote products through Haats/Mandi: Haats and Mandis provide an obvious platform to the organizations which they may use for an excellent brand building exercise with the minimum

of efforts. Canopies can be setup in the haats with a display of product & their schemes. A haat is a place where almost all the rural consumers come to purchase supplies for their routine & exceptional demands.

3.5. **Corporate social responsibility:** in most of the rural areas there are schools which are being carried out in the open. Organizations may provide basic infrastructure to these schools by giving organization sponsored sheds there. This practice will be a sort of advertisement as well as a way to build brand credibility.

4. Case study- ITC e-Choupal

4.1 About ITC-IBD

ITC is one of India's foremost private sector companies with a market capitalization of over US $14 billion and a turnover of US $3 billion. ITC has a diversified presence in Cigarettes, Hotels, Paperboards & Specialty Papers, Packaging, Agri-Business, Packaged Foods & Confectionery, Branded Apparel, Greeting Cards and other FMCG products. Its International Business Division (ITC IBD) was created in 1990 as an agricultural trading company; it now generates US $150 million in revenues annually. Initially, the agricultural commodity trading business was small compared to international players. By 1996, the opening up of the Indian market had brought in international competition. Large international companies had better margin-to-risk ratios because of wider options for risk management 14and arbitrage. For an Indian company to replicate the operating model of such multinational corporations would have required a massive horizontal and vertical expansion. In 1998, after competition forced ITC to explore the options of sale, merger, and closure of IBD, ITC ultimately decided to retain the business. The ITC-IBD taken the challenges to use information technology to change the rules of the game and create a competitive business that did not need a large asset base. Today, IBD is a US $150 million company that trades in commodities such as feed ingredients, food-grains, coffee, black pepper, edible nuts, marine products, and processed fruits.

4.2. ITC e-Choupal and the Strategy

ITC followed a different media/communication strategy which is more elaborate and extensive in rural marketing so far, which benefits both the farmers and the organization. The strategy is use the Information Technology and bridge the information and service gap in rural INDIA which gives an edge to market its products like seeds, fertilizers and pesticides and other products like consumer goods. With this strategy it can also enhance its competetiveness in global market for agri exports.

A pure trading model does not require much capital investment. The e- Choupal model, in contrast, has required that ITC make significant investments to create and maintain its own IT network in rural India and to identify and train a local farmer to manage each e-Choupal.

The company has initiated an e-Choupal effort that places computers with Internet access in rural farming villages; the e-Choupals serve as both a social gathering place for exchange of information (choupal means gathering place in Hindi) and an e-commerce hub. The computer, typically housed in the farmers house, is linked to the Internet via phone lines or, increasingly, by a VSAT connection, and serves an average of 600 farmers in 10 surrounding villages within about a five kilometer radius. Each e-Choupal costs between US $3,000 and US $6,000 to set up and about US $100 per year to maintain. Using the system costs farmers nothing, but the host farmer, called a sanchalak, incurs some operating costs and is obligated by a public oath to serve the entire community; the sanchalak benefits from increased prestige and a commission paid him for all e-Choupal transactions. The farmers can use the computer to access daily closing prices on local mandis(government-mandated markets), as well as to track global price trends or find information about new farming techniques either directly or, because many farmers are illiterate, via the sanchalak (the village farmer who runs the e-Choupal and acts as ITCs representative in the village). In addition they can also know about weather forecast(local) and best practices in the world from e-Choupal website. They also use the e-Choupal to order seed, fertilizer, and other products such as consumer good from ITC or its partners, at prices lower than those available from village traders; the sanchalak typically aggregates the village demand for these products and transmits the order to an ITC representative. At harvest time, ITC offers to buy the crop directly from any farmer at the previous days closing price; the farmer then transports his crop to an ITC processing center, where the crop is weighed electronically and assessed for quality. The farmer is then paid for the crop and a transport fee.

In the words of Mr. Abhishek Jain, Soya Farmer & e-Choupal Sanchalak Dahod Village, Raisen District, Madhya Pradesh

"Before ITC introduced us to e-Choupal, we were restricted to selling our produce in the local mandi. We had to go through middlemen and prices were low. ITC trained me to manage the Internet kiosk and I became the e-Choupal Sanchalak in my village. Today we are a community of e-farmers with access to daily prices of a variety of crops in India and abroad – this helps us to get the best price. We can also find out about many other important things – weather forecasts, the latest farming techniques, crop insurance, etc. e-Choupal has not only changed the quality of our lives, but our entire outlook."

'E-Choupal', has already become the largest initiative among all Internet-based interventions in rural India. 'e-Choupal' services today reach out to more than 4 million farmers

growing a range of crops - soyabean, coee, wheat, rice, pulses, shrimp - in over 31,000 villages through 5200 kiosks across six states (Madhya Pradesh, Karnataka, Andhra Pradesh,Uttar Pradesh, Maharashtra and Rajasthan)

4.3. ITC- Choupal Sagar

ITC has continued to build new infrastructure by supplementing the farmgate presence of e-Choupal with new physical infrastructure – rural marketing hubs called Choupal Saagars, positioned within tractorable distance of 30 e-Choupal centres and their user communities.

The e-Choupal – Choupal Saagar hub and spoke combination is unprecedented grassroots click and mortar infrastructure transporting rural local economies to a new level of productivity and consumption.

Choupal Saagars offer a combination of services to rural India.

Made-to-design agri-business hubs, they function as:

1. ITC agri-sourcing centres providing farmers a transparent best price sales window,
2. shopping centres bringing a range of products comparable to urban levels of choice, and
3. Facilitation centres delivering a host of farm-related services – training, soil testing, product quality certification, medical and clinical services, cafeteria and fuel station. 24 Choupal Saagar hubs are already in operation in 3 states, to grow to 100 by 2010.

4.4. Vision and Planning Behind the e-Choupals

Implementing and managing e-Choupals is a significant departure from commodities trading. Through its tobacco business, ITC has worked in Indian agriculture for decades, from research to procurement to distribution. ITCs translation of the tactical and strategic challenges it faced and its social commitment into a business model demonstrates a deep understanding of both agrarian systems and modern management. The principles followed in implementing the e-Choupals are

❒ Re-engineer, Not Reconstruct

Present Mandi system have some success factors in it. ITC decided to build e-Choupal on existing system. Already ITC has trading agents in local mandis for its tobacco business. It

retained the efficient providers and created roles for inefficient people. It recruites and engages members of landscape thereby making their expertise available to ITC. With this principle ITC can avoid the reinventing the system in areas where it can add no value with its presence i.e., in areas where efficient agents are there.

❒ Address the Whole, Not Just One Part

The farmers various activities range from procuring inputs to selling produce. Currently, the village trader services the spectrum of farmers needs. He is a centralized provider of cash, seed, fertilizer, pesticides, and also the only marketing channel. As a result, the trader enjoys two competitive benefits. First, his intimate knowledge of the farmer and village dynamics allow him to accurately assess and manage risk. Second, he reduces overall transaction costs by aggregating services. The linked transactions reduce the farmers overall cost in the short term, but create a cycle of exploitative dependency in the long-term.

Rural development efforts thus far have focused only on individual pieces rather than what the entire community needs. Cooperatives have tried to provide agricultural inputs, rural banks have tried to provide credit, and mandis have tried to create a better marketing channel. These efforts cannot compete against the traders bundled offer. Functioning as a viable procurement alternative, therefore, must eventually address a range of needs, not just the marketing channel. ITC e-Chopal provide services as a bundle what the entire agricultural community needs.

❒ An IT-Driven Solution

Delivery of real-time information independent of the transaction. In the mandi system, delivery, pricing, and sales happen simultaneously, thus binding the farmer to an agent. E-Choupal was seen as a medium of delivering critical market information independent of the mandi, thus allowing the farmer an empowered choice of where and when to sell his crop.

❒ Risk analysis & challenges

- Radical shifts in computing access will break community-based business models.
- The sanchalaks are ITCs partners in the community, and as their power and numbers increase, there is a threat of unionization and rent extraction.
- The scope of the operation: the diversity of activities required of every operative and the speed of expansion create real threats to efficient management.

o If ITC fails to full the aspirations of farmers, they will look elsewhere for satisfaction.

ITC e-Choupal, an innovative strategy which is elaborative and extensive in rural markets so far. Critical factors in the apparent success of the venture are ITCs extensive knowledge of agriculture, the effort ITC has made to retain many aspects of the existing production system, including retaining the integral importance of local partners, the company's commitment to transparency, and the respect and fairness with which both farmers and local partners are treated.

Conclusion

On the basis of above discussion, we can conclude that rural market in India with a growth rate of 25% is a huge opportunity for the players who want to invest in organized retail sector. The expected middle and high income households in rural India is 211 million in 2030 which is a witness why companies are seriously looking at rural market. At the same time, Government is also providing support to these companies for developing rural areas of India. Many major players operating in rural market e.g. ITC, Tata, DSCL etc. are facing many strong challenges in rural market like- facing difficulties in promoting their products due to unavailability of proper infrastructure, unique behaviour of rural customers, threat from the unorganized retailers of nearby towns etc. In order to overcome these challenges, firms are adopting certain strategies like sharing the culture and values of rural people, offering small packs of product at low prices, developing personal relationship with the rural consumers & involvement in various corporate social responsibilities.

References

1. Katiyar Ruchi, "Rural Marketing: challenges, opportunities & strategies,"
2. Pradhan Swapna "Retail Management".
3. "FMCG sales growing in rural India, to touch 5 bln by yr-end": Study New Delhi, Wednesday, Dec'10, 2018.
4. Banberjee Gargi, Ramanathan Gayetri, "LIC to build on rural presence for higher sale", Live mint.com, The Wall Street Journal.
5. Kashyap Pradeep, "Selling to the hinterland", Marketing White Book, Business World, 2019.
6. Dogra, Ghuman, "Rural Marketing Concept and Practice", Tata Mcgraw Hill, Ed-2018.
7. Krishna Macharyulu C.S.G., Krishanan Rama, "Rural Marketing", Pearson, second Edition, 2018.

Websites

- www.itcportal.com

- www.news.webindia123.com
- www.livemint.com
- www.indiaexpress.com
- Rajvanshi K. Anil "Key Issues for Rural Elecrification". www.pune.sancharnet.in
- www.ibef.org
- www.martrural.com
- www.thehindubusinessline.com

Relevance of Babasaheb's Thoughts in Current Scenario

Dr Anil Kumar Bharti

The thoughts of Dr. Bhimrao Ambedkar, who fought for life for social equality and social justice, are as relevant today as they were before. He devoted his entire life to the work of eradicating high and low, discrimination and untouchability. He always said that Justice always creates the idea of equality. Constitution, it is not a mere lawyer's document, it is a means of life. Due to his thoughts and actions, he became the messiah of the Dalits. He is also known as Babasaheb.

Babasaheb was born on April 14, 1891 in Mhow, Madhya Pradesh. Bhimrao Ambedkar was the fourteenth child of Ramji Maloji Sakpal and Bhimabai. He belonged to the Hindu Mahar caste, who were called untouchables or *Achhoot.* Because of this they were always discriminated. His father was serving in the Indian Army. Earlier Bhimrao's surname was Sakpal, but his father got his surname Ambedkar written after the name of his native village-Ambavdekar, which later became Ambedkar. After his father's retirement, his family moved to Satara, Maharashtra.

After the death of his mother, his father remarried and settled in Bombay. Here he pursued his education. In the year 1906, at the age of only 15, he was married to nine-year-old Ramabai. In the year 1908, he passed the 12th examination. After completing his schooling, he joined Elphinstone College in Bombay. He started getting a scholarship of Rs 25 per month from Raja Sahayaji of Gaekwad. In the year 1912, he took a master's degree in political science and economics. After that he went to America for higher education. In the year 1916, he was awarded a PhD for one of his thesis. After this he went to London, but he had to return midway. He did many works during this time period for livelihood.

He was also Professor of Political Economy at the Sidnam College of Commerce and Economics, Mumbai. After this he once again went to England. In the year 1923, he completed his research 'Problems of Rupee'. He was awarded the degree of 'Doctor of Science' by the University of London. He got admission in the British bar as a barrister.

Returning home, Bhimrao Ambedkar stayed in Germany for three months and continued his economics studies at the University of Bonn. He was once again awarded a PhD by Columbia University on June 8, 1927.

Bhimrao Ambedkar had to deal with untouchability since childhood. They were

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

discriminated from school to job. This discrimination and humiliation hurt his heart a lot. He took a vow to work for the complete eradication of untouchability. He said that there should be a separate election system in the country for the lower castes and tribes and Dalits. He roamed around the country and raised his voice for the rights of Dalits and did the work of making people aware.

He founded the "Swatantra Mazdoor Party" in the year 1936. The following year, in the 1937 Central Assembly elections, his party won 15 seats. He converted this party into the All India Schedule Cast Party. He stood in the election of the Constituent Assembly in the year 1946, but he was unsuccessful. He served as the Minister of Labor for the Defense Advisory Committee and the Viceroy's Executive Council. He became the first law minister of the country. He was made the chairman of the constitution making committee.

Bhimrao Ambedkar used to give special emphasis on equality. He used to say- “If the different castes of the country do not end their fight with each other, then the country can never be united. Sovereignty of all Dharma-shastras must end if we want a united unified modern India. We have this freedom so that we can improve those things, which is full of social system, inequality, discrimination and other things which are against our fundamental rights. For a successful revolution, it is not enough only to have discontent, but it is also very necessary to have a deep faith in justice, political and social rights. Political tyranny is nothing compared to social tyranny and the reformer who disobeys the society is more courageous than the politician who disobeys the government. Unless you achieve social freedom, whatever freedom the law gives you is of no use to you.

If we want to have a united unified modern India, then the sovereignty of all religions must end.” He used to say- “I believe in a religion that teaches liberty, equality and fraternity.” In the year 1950, he held an intellectual conference. went to Sri Lanka, where he became deeply influenced by Buddhism. On his return home he wrote a book about Buddhism and their religion. He embraced buddhism.

He founded the Indian Boudhya Mahasabha in the year 1955. He organized a general meeting on October 14, 1956, in which half a million of his supporters converted to Buddhism. Shortly after this, he died on 6 December 1956 in Delhi. His last rites were performed according to the custom of Buddhism. In 1990, he was posthumously awarded the Bharat Ratna, the country's highest civilian honour. Babasaheb, a knower of many languages, also wrote many books. He wrote his autobiography in English titled 'Waiting for Visa'. He writes- "This incident is also eye-opening. This incident is of a teacher teaching in an untouchable school of a village in Kathiawar. This incident through a letter in the General 'Young India' published by Mr. Gandhi

on December 12, 1929 In this the author told from his personal experience how his wife, who had just given birth to a child, died due to not being treated properly by a Hindu doctor.

According to the letter, my child was born on the 5th of this month and on the 7th my wife became ill. His pulse slowed down and his chest began to swell. He started having trouble breathing and felt severe pain in his ribs. I went to call a doctor, but he said that he would not go to a Harijan's house nor did he agree to see the child. Then I went from there to the court of Nagar Seth and Garisai and begged them for help. Nagar Seth assured that I will give two rupees to the doctor. Then the doctor came, but he saw the patient on the condition that he would see the patient outside the Harijan settlement. I came out of the settlement with my wife and young child. Then the doctor gave his thermometer to a Muslim and he gave it to me and I to my wife. Then returned the thermometer in the same process. It is about eight o'clock in the night. Looking at the thermometer in the light of the light, the doctor said that the patient had developed pneumonia. After that the doctor went and sent medicines. I bought some linseed from the haat and brought it to the patient. Later the doctor refused to see the patient, even though I had given him two rupees. The disease was fatal. Now only God could help us. The flame of my life has been extinguished. He died today at two o'clock in the afternoon. The name of that untouchable teacher is not given and in the same way the name of the doctor is not written. The untouchable teacher did not name for fear of retaliation, but the facts are true. No explanation is needed for that. Even after being educated, the doctor himself refused to apply the thermometer to the seriously ill woman and it was because of her refusal that the woman died. There was no turmoil in his mind that the work to which he was bound had certain rules.

He wants to run a public awareness campaign against untouchability and for social equality and social harmony in the country. Newspaper was a powerful medium for this, but money was needed for the publication of the newspaper. In his words- “It is disappointing that we do not have enough resources for this task. We don't have money, we don't have newspapers. Every day our people all over India are victims of brutality and discrimination by the authoritarian people, but no newspaper gives place to all these things. In a well-planned conspiracy, we are involved in blocking our views on socio-political issues in various ways. He started a fortnightly newspaper in Marathi under the name 'Mooknayak' in Kolhapur on January 31, 1920. This newspaper was the voice of the downtrodden people of the society. That's why it was named 'Mooknayak', that is, the hero of the silent people. He edited twelve volumes of it. In this, in addition to editorial comments, 40 of his articles were published. It ceased publication in April 1923 due to the economic crisis. Shahuji Maharaj also gave financial support in the publication of this newspaper. Addressing the meeting of Akhil Bharatiya Bahishkrit Samaj Parishad in

Nagpur, he said that "Dalits need not worry now, they have got a brilliant learned leader in the form of Ambedkar." A few years after the closure of Mooknayak, on April 3, 1927, he started publishing a new magazine named 'Bahishkrit Bharat'. Its publication continued till November 15, 1929. After this the magazine was also closed. He started the publication of Samta on June 29, 1928. After this, on November 24, 1930, the public and in 1940 the general government Jamaat Bannar and on February 4, 1956, started the publication of Enlightened India. Apart from India, Dr. Bhimrao Ambedkar's articles were also published abroad, in which 'The Times' of London, 'Daily Mercury' of Australia, 'New York Times', 'New York Amsterdam News', 'Baltimore Afro-American', ' The Norfolk Journal' etc. Apart from this, Ambedkar's thoughts were also published in many newspapers and magazines run by the blacks of America.

His entire life has been dedicated to the oppressed and downtrodden. He continued to work for the creation of a new nation with the emancipation of the outcaste society. Undoubtedly his contribution is unforgettable.

References

1. Agarwal, Sudarshan. Dr. B.R. Ambedkar, the Man and His Message: A Commemorative,Volume. Prentice Hall of India, 1991.
2. Ambedkar, Bhimrao Ramji. Dr. Ambedkar and Democracy: An Anthology. 2018.
3. Dr. Babasaheb Ambedkar, Writings and Speeches. 2002.
4. Ambedkar, Bhimrao Ramji, and Vasant Moon. Dr. Babasaheb Ambedkar, Writings and Speeches. 2003.
5. Ambedkar, B. R. The Buddha and His Dhamma: A Critical Edition. Oxford University Press, 2011.
6. Ambedkar, Mahesh. The Architect of Modern India: Dr. Bhimrao Ambedkar. Diamond Pocket Books Pvt Ltd, 2016.
7. Avari, Burjor. India: The Ancient Past: A History of the Indian Subcontinent from C. 7000 BCE to CE 1200. Routledge, 2016.
8. Bhagavan, Manu. Aishwary Kumar. Radical Equality: Ambedkar, Gandhi, and the Risk of Democracy. The American Historical Review, vol. 121, no. 5, 2016, pp. 1638–39.
9. Cháirez-Garza, Jesús Francisco. Touching Space: Ambedkar on the Spatial Features of Untouchability. Contemporary Southeast Asia, vol. 22, no. 1, 2014, pp. 37–50.
10. Grover, Verinder. Political Thinkers of Modern India: B. R. Ambedkar. 1992.
11. Hande, H. V., and Bhimrao Ramji Ambedkar. Ambedkar & the Making of the Indian Constitution: A Tribute to Babasaheb B.R. Ambedkar. 2009.
12. Mallaiah, L. C. The Relevance of Dr. B.R. Ambedkar's Views on Indian Agricultural Development. 2006.
13. O'Brien, Lucy. She Bop II: The Definitive History of Women in Rock, Pop and Soul. A&C Black, 2003. 14. Rao, G. R. S. Managing A Vision: Democracy, Development Governance. Gyan Publishing House, 2005. 15. Sachchidananda, and Sachchidananda. India: W.N. Kuber: B.R. Ambedkar. Builders of Modern India Series. Publications Division, Government of India, New Delhi, 1978.
16. Sharma, Arvind. Dr. B. R. Ambedkar on the Aryan Invasion and the Emergence of the Caste System in India.

17. Srivastava, Sanjay. Dalit Movement in India : Role of B.R. Ambedkar. 2007.
18. Thomas L. Hartsell, J. D., Jr., and Barton Bernstein JD. The Portable Ethicist for Mental Health Professionals: A Complete Guide to Responsible Practice. John Wiley & Sons, 2008.
19. Tomlinson, B. R., et al. The Shaping of Modern India. Pacific Affairs, vol. 56, no. 4, 1983, p. 763.
20. Unesco. A Human Rights-Based Approach to Education for All: A Framework for the Realization of Children's Right to Education and Rights Within Education. United Nations Publications, 2007.
21. Zene, Cosimo. The Political Philosophies of Antonio Gramsci and B. R. Ambedkar: Itineraries of Dalits and Subalterns. Routledge, 2013
22. RajKumar,EncyclopaediaofDr.B.R.Ambedkar,Vol.4,Commonwealth Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2010, pp. 131-135.
23. Now, the food they cook is untouchable, published in The Hindu, dated on 04/09/2012, p.4. http://www.thehindu.com
24. Dalit women begin fast-unto-death, published in The Hindu, dated on 09/09/2012, p. 3. http://www.thehindu.com
25. RajKumar,EncyclopaediaofDr.B.R.Ambedkar,Vol.4,pp.229-231.
26. H.M.Singh,K.C.Kaushik,S.R.Sharma(Eds.),B.R.Ambedkar on the Removal of Untouchability, Sarup & Sons publishers, New Delhi, 2008, pp. 26-67.
27. S.P. Sharma, Ambedkar and Socio Political Revival in India, Vista International Publishing House, Delhi, 2009, pp. 105-110.
28. S.N. Prasad, Life & Works of Ambedkar, ABD publishers, New Delhi, 2010, pp. 131-133 29. Ambedkar, B. R. (1987), Dr. Babasaheb Ambedkar Writing and Speeches Vol. 3
30. Bombay: Department of Education, Government of Maharashtra.
31. Ambedkar, B. R. (1987), Writings and Speeches, vol. 5, Bombay: Department of Education, Government of Maharashtra, p. 32.
32. Ambedkar, B. R. (1990). Annihilation of Caste: An Undelivered Speech. Arnold Publishers. Ambedkar, B. R. (1943), Mr. Gandhi and the Emancipation of the Untouchables. Thacker & Company, Limited.
33. Ambedkar, D. B. (1979). Writings and Speeches, vol. 4, Bombay: Department of Education, Government of Maharashtra, p. 256. 34. Government of Maharashtra, (1982). Babasaheb Ambedkar:Writings and Speeches,Vol. 2.
35. Nithya, P. (2012) Ambedkar's vision on the Empowerment of dalit education. International Journal of Multidisciplinary Educational Research. 1 (2), 47-52
36. Annihilation of caste, with a reply to Mahatma Gandhi'Address before the Annual Conference of Jat-Pat-Total Mandal, Lahore, 1935.
37. Ambedkar's speech in Bombay,Provincial D.C.Conference,April,10-11,1925.
38. Ambedkar, B. R., What Congress and Gandhi have done to the untouchables? (Thacker and Company, Bombay, 1945)
39. Ambedkar, B.R. (1979), Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol.1 (compiled by Vasant Moon), Education Department, Government of Maharashtra, Bombay.
40. IshitaAdityaRaySarbapriyaRay,B.R.AmbedkarandhisPhilosophyonIndian Democracy: An Appraisal.
41. Liz Whefer (ed), Illustrated Oxford Dictionary,New Delhi Oxford university press, 2003,p. 234.
42. Gaubas,O.P An Introduction to Political Theory, New Delhi,Macmillan publishers, 1995,p.98.
43. Dr.Lakshmi T and Rajeshkumar S In Vitro Evaluation of Anticariogenic Activity of Acacia Catechu against Selected Microbes, International Research Journal of Multidisciplinary Science & Technology, Volume No. 3 , Issue No. 3, P.No 20-25, March 2018.

Swami Vivekananda's Contribution Regeneration of India

Shubham Rai
Research Scholar
Political Science
Banaras Hindu University

Abstract

Swami Vivekananda ji will always remain a great great man among the great men of his time. The contribution made by Swami Vivekananda in the political, social, cultural and spiritual upliftment of India will always remain respected and respected. A great man who made India proud at a very young age Swami Vivekananda gave a vision not only to India but to the whole world, which always became a medium of development for us and our country. Till then India cannot be a complete development of the country. This great personality has given an unprecedented honor to India through his thoughts on the world stage. The youth who spent his whole life for Mother India and for establishing the pride of his motherland on the world stage, will always remain admirable. Swami Vivekananda's idea of India's culture propagates and disseminates India's civilization to the whole world.

Born on January 12, 1863, this great saint gave the message of unity, peace, harmony and brotherhood to India as well as to the whole world. This great saint worked to awaken India's sleeping soul and self-confidence from his childhood. Narendra, known for his sharp mind, was very fickle, but his desire to know human nature and the whole world made him Vivekananda from Narendra. Introduced to his self-confidence, this great saint dedicated his whole life for his countrymen, due to his greatness, today he is seen not only in India but in the whole world with respect and goodwill. Swami Vivekananda ji was very distressed by the current situation of India, he used to wake up India's sleeping soul and self-confidence and felt that until India's spiritual power does not rise, then India cannot solve its problems in those days. India was bound in the shackles of subordination, seeing such condition of his mother India, Swami Vivekananda was feeling pain in his heart and mind and he got agitated to get rid of his mother India from the shackles of this subordination. Swami Vivekananda Swami Vivekananda felt that in order to get freedom for India, he would have to give up the social evils prevalent in his

society, in such a way, Swami Vivekananda set out to regain India's lost self-confidence through India's civilization and culture. The saint gave the message of humanity not only to India but to the whole world in his very young age.Swami Vivekananda was well aware of the difficulties of India, in those days he made tireless efforts to remove the evils prevailing in the society and Swami Vivekananda's efforts were successful to a great extent. Swami Vivekananda saw India from a different point of view. He believed that until India is empowered socially, India cannot be politically economically independent and empowered. Swami Vivekananda's contribution to India's resurgence is incomparable. No, but this great saint who sacrificed his everything for the upliftment of the humanity of the whole world, introduced India to its spiritual and moral power through his intellectual power. Swami Vivekananda's contribution in India's political, social, economic, spiritual, cultural empowerment is commendable.

Arise, Awake and stop not till the goal is reached Swami Vivekananda's message is not India but the source of inspiration for the youth of the whole world and the main mantra of success. Swami Vivekananda believed that if you set a goal for your success So you don't have to look back, you don't have to stop, you don't have to get tired, you don't have to rest, you have to make continuous efforts to achieve your goal. Swami Vivekananda believed that we should always keep our energy moving because if we stop once, then it is very difficult to walk again with the same motivation. Today's youth Swami Vivekananda Energize yourself with this message Swamiji wanted to energize India through the spiritual power of India. Swami ji used to try to keep the whole world moving through his messages and through the secret hidden in his messages, this message of Swami ji serves as an inspiration for all of us.

Strength is life weakness is death and considering yourself weak is the biggest sin Swami Vivekananda used to say that a person should always keep himself motivated, a person should always try to win over his weaknesses and his evils because Until a person cannot conquer his weaknesses and his evils, he cannot be successful. All these things are applicable for the upliftment of a nation, until a nation, a society, does not know its weaknesses and its evils. Swami Vivekananda believed that problems are natural, but we should not be afraid of those problems, but eliminate those problems from the root. Efforts should be made to do this and through such efforts a person, a society and a nation can achieve its progress. This message of Swami Vivekananda proves helpful in the upliftment of the Indian society.

Swami Vivekananda's contribution in the renaissance of India is highly commendable. Made his important contribution Swami Vivekananda ji did the work of awakening India's sleeping faith and intellectual power through his vigorous and speeches. Swami Vivekananda ji made his important contribution in Indian Renaissance through his own efforts This effort of Swami ji proved to be an inspiration in the Indian Renaissance as well as in India's freedom

movement. Through Indian Renaissance, Swami ji made his important contribution to India's freedom movement. This contribution of Swami ji was never forgotten. May go. In his very little age Swami ji has made a lot of efforts for the complete upliftment of India through his intellectual prowess. Swami Vivekananda's place is important in the great sages of India. Swami Vivekananda's contribution to the renaissance of not only India but the whole world is unforgettable It was believed that on the basis of superstition, India can never progress or become a world guru in the midst of social evils, so India will first have to conquer its ignorance on its evils, only then India can move forward and lead the whole world. It is possible that Swami Vivekananda ji, through his thoughts, contributed significantly to India's renaissance as well as India's independence movement through his intellectual power.

Swami Vivekananda ji was a person who was proud of his culture and his civilization from the beginning. Swami Vivekananda ji used to believe that the country whose culture and civilization does not develop, that country cannot develop. Every person should be proud of the mother tongue of his country, the culture of the country, the civilization there, only then the real development of that country will happen. Swami Vivekananda was well aware of the spiritual power of India. Swami Vivekananda believed that Hinduism is the soul of India and India can lead the world only through Hinduism, Hinduism is the power that makes India Different from the world, Hindutva means everyone's support, everyone's development, everyone's faith and everyone's effort. Swami Vivekananda believed that Hinduism is such a subject through which India can provide a new direction to the whole world. Swami Vivekananda believed that Hinduism never humiliates anyone. Hinduism talks about taking everyone along. Hinduism is the concept of inclusive Development. And gives emphasis on brotherhood.Hinduism never talks about hatred, Hinduism believes in the equality of all religions, Swami Vivekananda believed that we should be proud of our religion and culture and civilization, but at the same time, we should respect the religion, culture and civilization of others. Hinduism always teaches to respect the feelings of others. Swami Vivekananda used to say that I am a Hindu and I am proud to be a Hindu. On the other hand, Swami Vivekananda explained the meaning of Hinduism not only to India but to the whole world and also gave respect to Hinduism in the whole world. . Swami Vivekananda's Hinduism is not narrow, he has brought a detailed explanation of Hinduism not only to India but to the whole world. People of the whole world are convinced of this skill of Swami ji. Through Hinduism, Swami ji has shown the real identity of India to the whole world Informs and tells the meaning of the power of Hindutva to India as well as to the whole world.

Swami Vivekananda's nationalism is a source of inspiration not only for the people of India but for people all over the world. If there is poverty, ignorance, tyranny due to superstition,

then that nation can never progress, so to overcome all these evils, we all have to raise the confidence of the nation and a nation can overcome all these evils only on the strength of its selfconfidence. May be Swami Vivekananda ji believed that nation is not a piece of land but a living entity. What defines the nation Swami Vivekananda ji Nationalism is not only for India but for the world humanity is like a mirror where every section of the society finds its place want to serve Service to the poor is the true service and devotion to the nation. The basis of Swami Vivekananda's nationalism is humanity and human love, without which no nation can be imagined.Swami Vivekananda ji believed that every nation has its own identity and its national identity only helps it to create a different identity from other nations of the world, India's national identity is its tolerance, unity in diversity and social harmony. This identity makes India respectably stand in a different line from other countries of the world. Hinduism is also a major national identity of India. Swami Vivekananda's nationalism is known for social harmony and unity. Swami Vivekananda says that for the next 50 years, we should forget all the gods and goddesses and only worship our motherland Mother India, only then India stands in the category of a strong nation. Maybe, the interpretation of the nation presented by this great saint of India is a golden example for the whole world.

All power is within you, you can do everything and anything Swami Vivekananda ji believed that all the powers of the universe are present within the human being, the only need is that by recognizing those powers, the person should move in the right direction. Swami Vivekananda ji believed that if a man recognizes his own powers and moves ahead with the powers that are inherent in him, then it will be good for the society. If the society is good, then the nation will be good and India will be ready to lead the world. Swami Vivekananda always tried to uplift the world through self-power. Swami Vivekananda was well aware of India's power and self-confidence, so he believed that a person must first rekindle his inherent strength and self-confidence for upliftment and move forward. Have worked tirelessly to arouse interest.Swami Swami Vivekananda believed that you cannot believe in God until you believe in yourself, so one must recognize oneself and believe in oneself before believing in God, Swami Vivekananda ji also believed that serving the poor and suffering is like serving God, to serve God we must first adopt the truth and without adopting the truth we cannot serve God, Swami Vivekananda ji now Believed that God resides in all human beings, therefore service to humanity is service to God and a person must first believe in himself before believing in God. Can keep

Swami Vivekananda ji also believed that a person should love everyone in his life, should live with everyone with love, this is humanity and this is the real religion of a person. Swami ji believed that love is life, so is death. That's why a person should live lovingly with everyone

because love is the basis of unity, love is the basis of humanity, jealousy, ignorance prevailing in the society, illiteracy can be won through knowledge but knowledge can be gained only and only through love. Swami ji also believed that love is the greatest religion of man, that is, to love mankind. In his young age, this great saint is a successful attempt to establish a new horizon for India. Swami Vivekananda knew the soul of India very well.

Swami Vivekananda ji sacrificed his everything for the upliftment of India and Mother India, Swami Vivekananda ji has always been trying to awaken India's sleeping soul and self-confidence, Swami Vivekananda ji was such a great saint of India who, through his scholarship, But gave India an interview of truth and courage, Swami Vivekananda ji had deep faith in India's ancient culture and civilization, he believed that India can lead all the countries of the world only because of its cultural identity, Swami Vivekananda ji India Swami Vivekananda ji through his speeches and thoughts communicated a revolution in the Indian public, this saint of India in his very young age not only India but humanity to the whole world And gave the message of brotherhood.

References

Books

1. Essential Vivekananda, Page 157, 276, 277, Mukul Kanitkar, Anoop A.J., Rupa Publication, New Delhi .
2. भूख और भोज के बीच विवेकानन्द, पृष्ठ 34,36,37, शंकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. विवेकानन्द एक खोज, पृष्ठ 29, 32, शंकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. विवेकानन्द के सपनों का भारत, बजरगं लाल गुप्ता, लक्ष्मी नारायण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. विवेकानन्द की आत्मकथा, शंकर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

News paper articles

1. On Swami Vivekanand's birth anniversary, a look at his teachings, message – by Gargi Nandwana (The Indian Express, January 16, 2023)
2. Celebrating Swami Vivekananda – by Balmiki Prasad Singh (The Hindu, March 31, 2011)

Genealogy of Divine Procreation in the Jātakas

***K. Prasant Shekhar**
He teaches History in the University of Delhi.
***Dr Beauty Bhagat**
She is Delhi based independent scholar

Our knowledge and experience of birth, more or less, is subject, "(a) process that spreads it over the surface of things and bodies, arouses it, draws it out and bids it speak, implants it in reality and enjoins it to tell the truth...." (Foucault 1976: 72).

It is universal to observe a tendency among pious followers of any religion, as much as possible, to embellish the lives of their founders. Consequently, the lives of the founders become mythified, for, they apparently adorned the lives of the founders by numerous legends including miracles in due course of time. The birth and the death-two episodes in the life of a founder, the first and the later one stained with some sort of impurity, and infinity and eternity respectively, historically, acknowledged as most important events by their pious followers, and thereby, more prone to be mythified.

The texts primarily of hagiographic nature, more specifically the *Jātakas* are all about narrations of previous births of the Buddha. Since, in the *Theravāda* tradition, a bodhisattava appears to be a person vowed to become a Buddha: the last life of a bodhisattava essentially that of a buddha. The hagiographic texts along with the *sutta* literature are prime sources for many narratives of divine procreation. Accordingly, to conceive a child *(gabbhassāvakkanti),* these sources are abide by coming together of three prerequisite components, viz., *sannipatita* of mother and father, the mother to be in *rtu*, and the presence of *gandharva.* As laid down in the *Majjhimanikāya, (MN.2.156-57)*

Jānanti pana bhonto yathā gabbassa avakkanti hotīti? Jānāma mayam bho yathā

gabbhassa avakkanti hoti. Idha mātā-pitaro ca sannipatitā honti mātā ca utunī hoti, gandhbho ca paccupatthito hoti. evam tinnam sannipātā gabbhassāvakkanti hotīti.

Sir, do you know how the pregnancy takes place? We know how the pregnancy takes place. Here, there is union of the mother and father *(sannipatita),* and it is the mother in her period *(utu)*, and the *gandharbha* is present. When these three (factors) are present, the pregnancy takes place.

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

Aforesaid passage repeated with slight variations in many texts. For instance, as we read in *Divyāvadāna* (1.12-16):

> *"(a)pi tu trayānām sthānānām sammukhī-bhāvāt putrā jāyante duhitaraś ca. katamesām trayānām? mātā-pitrarau raktau bhavatah samniparitau, mātā kalyā bhavati, rtumatī, gandharva-pratyupasthitā bhavati, etesām trayānām sthānānām sammukhī-bhāvāt putrā jāyante duhitaraś ca...."*

Sons and daughters are born as a consequence of the presence of three conditions

> *(sthāna).* What are these three? The mother and father in love *(rakta)* are united *(sannipatita).* The mother, a healthy one, is in her period *(rtumatī),* and the *gandharva* waiting upon them. Consequent to fulfilling of these three conditions, sons and daughters are born.

These texts are very categorical about presence of these three conditions. In other words, in absence of any of these three components, there is no conception.

Despite such categorical pronouncements, there are many passages that, on the one hand, do not respect such prerequisites and on the other, pregnancy was achieved merely with a single condition. The second observation tends to conclude a fact that most of the biographers, more than often, eliminate the parental component from the birth stories of the religious founders. In case of Buddha, for instance, biographers speak less about his father but more about his mother. The context aptly observed by Tambiah (1984: 360: *fn* 17) as:

> "(M)āyā, who died 10 days after giving him birth, and whom he visited in Dāwadueng heaven during one rains retreat to give her moral instruction. He returned in glory from the heavens attended by deities".

Further, Buddha while taking a form of a six-tusked white elephant that descended from the *Tusita*-heaven, entered into right side of *Māyā.* This fact of elimination of paternal factor is attested in the *pañca-mahā-vilokana* of the *Nidāna-kathā.* Its last part *(mātā-vilokana)* read as:

> *Buddha-mātā nāma lolā surā-dhuttā na hoti, kappa-satasahassam pana pūrita-pāramī, jātito patthāya akhanda-pañca-sīlā yeva hoti, ayam ca mahāmāyā nāma devī edisā ayam*
>
> *ca me mātā bhavissati* (J.I.49.25-29)

The mother of the Buddha is not distracted by desire, nor vitiated by wine. She professed perfections for ten-thousand kappa, beholding completely the five moral precepts since her birth. This *Mahāmāyā* is precisely like this and thus she will be my mother.

Aforesaid passage makes it clear that the Buddha descended from *Tusita* heaven by his own choice for which his father is not concerned. In the *Mahāvastu* and *Lalitvistara*, nonetheless, there are instances wherein it is maintained that only after *Māyā's* request that *Śudodhana* did not hold carnal desire (kāma-vitarka) for her, lest he should violate her vow of chastity *(brahmacārinī, śila-vratopavāsa):*

> *"mā suda khu bhūmipāla kāma-vitarko mā mayi pratikāmksi presaya mā ti apunyam bhaveyā mayi brahmacāriniye"* (Mvt 2.6.10-11)

"Do not then, I pray you, O king, desire me with thoughts of sensual delights. See to it that you will be guiltless of offence against me who would observe chastity."

A passage in the *Lalitvistara* suggest *Śudodhana* observing vow of chastity, leading an austere life as in the *tapovana* after request of *Māyā:*

> *rājāpi śuddhodanah samprāpta-brahmancaryo 'parata-rāstra-kāryo 'pi supariśuddhas tapovana-gata iva dharmam evānuvartate sma (Lal.72.20-22)*
>
> The king *Śudodhana* observed chastity by his own. Never negligent of his governmental duties, he was stainless and followed most righteous way of life *(dharma)* as if in the penance-grove or *tapovana.*

The purity of womb of mother, it is said in yet another passage elsewhere, maintained by her destined death seven days after birth of the Buddha;

> *Yasmā ca bodhisattena vasita-kucchi nāma catiya-gabbha-sadisā na sakkā hoti aññena āvasitum vā paribhuñjitum vā tasmā bodhisattamātā sattahajāte bodhisatte kālam katvā*
>
> *tusitapure nibbattati (J.I.52.2-4)*
>
> As much as the womb dwelt in by the Bodhisattava seems the interior of the sanctuary, and correspondingly it cannot be dwelt in or enjoyed by anybody else, his mother died seven days after his birth and was born in the Tusita heaven.

The elimination of the parental components invariably implies a complete absence of the biological components-the *rtu* (menstruation) of the mother and erotic copulation of the parents *(sannipatita)*. These passages nevertheless attest presence of at least one componentthe *gandhabba.*

The *Sāma Jātaka (J.VI.540)* provides a case wherein the divine procreation secured by sparśa or the act of touching of woman's navel. In different words, to procreate offspring, there is no recourse to the sexual organ *(upastha).* This is a birth story of the young ascetic

Sāma. Here, his parents, *Dukūlaka* and *Pārikā,* against their consent, married by their (grand) parents. But both of them lived apart, without descending into the ocean of carnal passion and remain celibate. They eventually retired to the forest, become ascetics, and living separately in their huts on the bank of River *Migasammatā. Sakka devānam Inda,* while having seen the danger of becoming blind in their old age, approached them and said, "(y)ou must have a son to attend and support you *(upatthāka ālambana)* in old age. They were disgusted *(jigucchimha)* to have a son by the worldly rule *(loka-dhamma).* After his request turned down, Sakka suggested to him to touch her navel:

> *"Bhante sace na evam karotha Pāritāpasiyā utuni-kāle nābham hatthena parāma*
>
> *seyyāthā" ti* *(J.VI.73.26)*

If you would not do thus, you should touch her navel with your hand at the proper season *(uthuni kāla).*

And following his advice had their son named *Sāma*. In this birth narrative, *sannipatita* or the mother and father in love *(rakta)* are united, one among three prerequisite components apparently is absent. The role of *gandhabba* is played by *Sakka devānam Inda.*

The *Mātangajātaka* (J.IV.497) narrates yet another variant of asexual procreation of progeny. The protagonist of this narration apparently is a *Bodhisatta Mātanga* of *Candāla* community. This community lies at the lowest tier of caste hierarchy. Here, the protagonist *Bodhisatta Mātanga,* despite being attained wisdom, pummelled by followers of *Ditthamanglikā,* beautiful daughter of local merchant, on account of his low birth. When he awoke, vowed to marry her. He did so by standing for seven days in front of her home. They lived together as a wife-husband but did not transgress the rules of caste *(jātisambhedavītikkamam)* which, invariably, translate as they never had sexual relations.

Then he thought, "only by renouncing the world, and in no other way, shall I be able to show this lady the highest honour and give her the best gifts" and then he go into forest only to return after developing eight attainments and the five super natural faculties. After coming back, he directed his wife to say "my husband is not *Mātanga,* but the great Brahma". During one of visit, he assumed the appearance of Brahma, his wife *Ditthamanglikā* were in *rtu,* he touched her navel with thumb and she conceived.

It is only after that he said to her that you are with child, and you shall bring forth a son, and that you and your son shall receive the highest honour and tribute. The honour as enumerated includes, both for elite section of society as well as lower section of population: the water that washes your feet shall be used by kings for the ceremonial sprinkling throughout

all India, the water you bath in shall be in elixir of immortality, those who sprinkle it on their heads shall be set free from all disease and shall not know ill luck, and also, they who lay the head on your feet and salute you shall give a thousand piece of money, they who stand within your hearing and salute you shall give a hundred, and they who stand in your sight and salute you shall give one rupee each.

The *Kusajātaka (J.V.531)* is yet another *Jātaka* retelling divine procreation: the king of Malla was childless. After the advice of man of the city, the king agreed to expose his chief queen- virtuous queen *Sīlavatī,* in streets-giving the act a religious character. "By the power of her virtue, the abode of Sakka manifested signs of heat". Sakka, after securing consent of two bodhisatta in heaven, he himself went disguised as an old Brahmin to the door of the palace, for, no man make a breach in her virtue. After some dramatic events, Sakka himself touched her navel with his thumb. The wise lady then knew that she had conceived.

The *Śyāmaka Jātaka* of *Mahāvastu* provides another example for asexual procreation, i.e., absence of *sannipatita.* Nor the act of touching *(sparśa)* of woman's navel *(nābham)* as we observed in the *Sāma Jātaka* did played any role in divine procreation. Rather it was an act of sharing of whatever and whenever the sheer brought in any king of roots or fruits such as *"kodrava, śyāmaka, prāsādika"* among others with his wife *Pārāgā,* and she became pregnant.

The *Aambusājātaka* and *Nalinikājātaka (J.V.523* and *J.V.529,* respectively) is yet another illustration of this class. Although these cases involve neither copulation of the parents *(sannipatita)* nor *rtu* (menstruation) of the mother, for, there is no woman involved there, it is only drinking water mingled with semen of ascetic led to pregnancy. Even *Sakka* depicted here in negative terms. Despite absence of such prerequisite, it is asexual mode of procreating progeny, According to former one,

> *ath' ekā migī tassa passāvatthane sambhavamissakam tinam khādi udakam pivi, ettaken eva tasmim patibaddhacittā gabham patilabhitvā tato patthāya tatha āgantvā assamasāmante yeva carati.*
>
> Now a certain doe in the brahmin's mingeing-place ate grass and drank water mingled with his semen, and was so much enamoured of him that she became pregnant henceforth ever resorted to the spot near the hermitage.

And, in the next,

> *Aambusājātaka vuttanayen' eva tam paticca ekā migā gabbham patilabhitvā puttam vijāyi, Isisiñgo t' ev' assa nāmamah ahosi.*
>
> Exactly in the same way as related in the *Aambusājātaka* birth, a doe conceived by him and brought forth a son who was called *Isisiñga.*

These two case studies, along with the *Sāma Jātaka* called for further studies on the relationships between deer and ascetics. Critically, varying dimensions involved there and elsewhere suggest a strong bond with deer: in the earlier two cases, deer emerged as only animals impregnated by ascetics; in the *Sāma Jātaka,* their protagonists, *Dukūlaka* and *Pārikā,* established their hermitage on the banks of river *Migasammatā* which in literal terms stands for "honoured by the deer"; and also, the Buddha delivered his first discourse in a deer park *(migadāya).*

The application of principle of *jātisambhedavītikkamam* (not transgress the rules of caste) needs a close examination of contemporary social dynamics. Its explicit application in the *Mātangajātaka* wherein their protagonist have an unambiguous caste affinity- *Mātanga* the *Candāla* against his wife, *Ditthamanglikā,* the *Vaiśya*-but not in the *Kusajātaka* where the king and the queen apparently belong to the same caste, reveal a deep social structure of these

Jātaka narratives. Yet, it is equally true that in the *Kusajātaka, Sakka* disguised himself as a Brahmin but not someone belongs to *Śūdra* community. Further, as it appears, hagiographic nature of these narratives used to assert the purity and extraordinary capabilities of the bodhisatta that they were capable of procreating without diluting their ascetic purity as in the

Mātangajātaka as well as able to born even in absence of sexual union as is illustrated in the *Kusajātaka* and *Sāmajātaka.*

Furthermore, these *Jātaka* narratives simultaneously highlight another dimension in the form of gender relations. In the *Kusajātaka,* for instance, it is on account of virtuous character of queen *Sīlavatī* that the abode of *Sakka* manifested signs of heat and forced *Sakka* to take lead for, after securing consent of *gandhava,* he reached her disguised as a Brahmin, touched her navel and she conceived. In different words, *Sakka* disguised as a Brahmin but not *Cāndal-a* case in the *Mātangajātaka,* and touched her navel so that she conceived, as it appears, did not break principle of *jātisambhedavītikkamam,* and thereby, her sexuality was maintained.

This birth story of *Sāma* treated with great deal of discussion in the *Milindpanha.* Here, Sakka suggests,

> *yadi me vacanam na ussahatha kātum, yadā tāpasī utunī hoti pupphavatī tadā tvam bhante dakkhinena hatthangutthena nābhim parāmaseyyāsi, tena sā gabbham lacchati, sannipāto yev'esa gabbhāvakkantiyā ti* (126.20-23) if you do not wish to carry out my word, you should touch her navel with your right hand-thumb, when the female ascetic is in her period *(utunī)* and menstruating *(pupphavatī).* By this, she will conceive a child *(gabbha).* This is nothing but conjunction *(sannipāta)* and will lead to pregnancy (or, descent of the embryo).

They agreed because this will not affect their austerity (*tapo bhijjati:* 126.25). Simultaneously, a *devaputta* in heaven after having exhausted all his merits, were about to descend to *prithvīlok. Sakka* afterwards approached and entreated *devaputta* to born as a son of *Dukūla* and *Pārikā* for which, he agreed. It was followed by *Sakka* calculating the date of his (re)birth *(utpattidivasa)* as well as suggesting a day of touching of *Pārikā's* navel, the day one among her period of fertility coinciding with the descent of the *devaputta*. Summarily, three factors working simultaneously *(iti te tayo samnipātā ahesum)*-the menstruation *(rtu)* of *Pārikā, Dukūla* touching her navel *(nābhi -parāmasana),* and the descent of the *devadutta*. Touching of the navel by *Dukūla* led arise excitement *(rāga)* of *Pārikā*. At this point *Nāgsena* while turning to *Milinda*, explained:

> *mā tvam samnipātam ajjhācāram eva maññi. uhasanam pi samnipāto, ullapanam pi samnipāto, upanijjhāyanam pi samnipāto, pubba-bhāga-bhāvato rāgassa uppādāya āmasanena samnipāto jāyati,*
>
> *samnipātā okkamanam hotīti anajjhācāre pi mahārāja parāmasanena gabbhāvakkanti hoti. yathā mahārāja aggi jalamāno aparāmasanena pi upagatassa sītam byapahanti evam eva kho mahārāja anajjhācāre pi parāmasanena gabbassāvakanti hoti*

Do not think that the copulation *(ajjhācāra)* is (the only mode of) conjunction *(sannipāta). uhasana* (laughing) is also conjunction, *ullapana* (addressing) is also conjunction, and thinking *(upanijjhāyana)* is also conjunction. Conjunction also happens by *āmasana* (touching) after rising up of excitement *(rāga)* which precedes.

Conjunction followed by the descent *(okkamana)* (of the *Devputta*). Thus, O great king, even without copulation *(an-ajjhācāra),* the descent of embryo takes place just by touching *(parāmasana).* Alike blazing fire expels the coldness of substances in its proximity without actual touching it *(aparāmasana),* so, O great king, and the descent of embryo takes place by touching, even without actual copulation.

Contrary to only one mode of asexual union as provided in the *Sāma Jātaka,* the *sparśa* (the act of touching of woman's navel), *Nāgsena* here enumerates four different ways- uhasana (laughing), *ullapana* (addressing), thinking *(upanijjhāyana),* and *āmasana* (touching) after rising up of excitement *(rāga)* which precedes of asexual union leading to procreation of a progeny, besides ordinary copulation *(ajjhācāra),* for the process of progeny. All these save *ajjhācāra* which means sexual intercourse, are characterized with absence of the sexual organ. Nevertheless, *Nāgsena* reaffirms prerequisite of presence of *devputta.*

From aforesaid passage it appears that the *Milindpanha* was well aware of such pronouncements made on divine procreation and, at the same time, make attempts to conciliate

varying perspectives on procreation: monk *Nāgsena* summarizes narratives of divine procreation from the Jātakas and the Vinaya. Most importantly, Nāgsena deals in detail the *Sāmajātaka* and his arguments therein may summarize as following: that all of the mother, human being or doe, apparently in her *rtu,* and that *gandhaba* is indelibly ready to assume a new birth.

Nāgsena moves further to explain the meaning of intervention by *Sakka* for him enticing a particular deva to enter into womb again: under following existing four circumstances that a *gandhabba* may enter a womb: by means of *kamma,* by means of mode of birth *(yonivasena)*, by means of family *(kulavasena),* and by means of entreaty. Critically, however, saving those who have myriad wholesome roots can arise their birth wherever they wish, the *kamma* determines the next birth of the rests. The intervention of *Sakka,* in this classification coincides with the means of entreaty *(Mil.127).* At this place, *Sakka's* intervention tantamount to, in pre-birth scenario, upgrading soul of a deceased person to *bodhisatta* and in post-birth scenario, their conception without sexual intercourse as in the *Sāmajātaka* and *Kusajātaka,* theirs pure and extraordinary character. Elsewhere *(Mil.125), Nāgsena* contends that something which is drunk as done by doe in the *Aambusājātaka* and the *Nalinikājātaka* or eaten by mouth stands for union *(sannipatitā)* of two.

Traditionally, literatures enumerate three prerequisites for conceiving a baby. Yet, the procreation of offspring with no resort to sexual intercourse *(kaya-samsarga, maithuna)* had many illustrations scattered in hagiographic literatures in Buddhism and literatures of other Indic religious traditions. A systematic reference of such divine procreation including those mentioned in the commentary literature, recite seven ways for securing it. The *Sāmajātaka* and its further elaboration in the *Milindpanha* ascertain four mechanism:-*āmasana* (touching), *ūhasana* (smiling), *ullapana* (addressing), *upanijjhāyana* (thinking) besides an ordinary copulation *(ajjhācāra).* These references, sprouting out of pre-Buddhist folklores, apparently, emphasize extraordinary character of a bodhisatta or his son. Simultaneously, they tend to activate disdain towards samsara-the cycle of birth and rebirth. That life in all its aspects are suffering and suffering itself rooted in the descent in the womb, an indicative of insignificance of life as well as a basis for condemning sexual encounters of monks and nuns.

From different perspective, this is what Alan Sponberg says, "ascetic misogyny" in that such asexual procreation deprive mothers from her rights of giving birth and life. Nevertheless, such codified pre-Buddhist folklores secure its aim of divinization to such great souls in the eyes of its followers and non-followers even.

References

1. Cowell. E. B.: *The Divyāvadān* (Cambridge 1886).
2. Fausbøll. V. Ed.: *The Jātaka* 7 Vols. (London, 1877-97; Repr. Oxford 1962-64.) [Trans. Cowell 1895-1907].
3. Foucault M., *The Will To Knowledge, The History of Sexuality* I (1976), Trans. R Hurley (Harmondsworth: Penguin, 1992).
4. Senart E.: *Le Mahāvastu Avadāna* 3 Vols. (Paris 1882-1897)]Trans. Jones J. J., London 1949].
5. Sponberg, Alan. *"Women in early Buddhism."* In José Ignacio Cabezón (Ed.) Buddhism, Sexuality, and Gender. (Albany 1992).
6. Tambiah, S.J.: *The Buddhist saints of the forest and the cult of amulets* (Cambridge 1984).
7. Thomas, E.J.: *The Life of Buddha, as Life and History* (London, 1948).
8. Treckner , V.: *The Milindpanha* (London 1880).

   and R. Chalmers.: *Majjhimanikāya.* 3 Vols. (London 1888-1902).

Nature - Human Interface : An Ecocritical Study of Anita Desai's Fire on The Mountain

Dr Vipin Pratap Singh
Assistant Professor, Department of English
PGDAV College (Evening), University of Delhi

Abstract

Ecocriticism, a scholastic aftermath of environmentalism and its contemporary plan, is another basic development that endeavours to interface artistic analysis and hypothesis with the present ecological issues. It concentrates on the connection between the study of nature and literature by applying ecological ideas to literature. Its point is to incorporate ecological issues and scholarly analysis by zeroing in on the examinations of the abstract portrayals of nature in artistic texts, and the abstract developments of the ecological emergency in eco-artistic talks. The environments supporting all life on earth have become fundamentally jeopardized by our developing numbers and levels of utilization this book difficulties the human/nature parallel to assist us with taking a gander at the normal world deprived of laid out generalizations. The outcomes show that nature is a unified piece of human personality; moreover, humankind and the regular world are mutually dependent and interconnected; the outcomes likewise accentuate that saving the normal world is, for sure, the essential for the assurance of humanity.

Keywords: Nature, isolation, Aging, family

Anita Desai is one of the world's amazing and one of the most mind-blowing Indian current novelists in English traversing over numerous many years. She is an Indian novelist, a brief tale author and a screenwriter who has impacted ages of modern essayists. She has improved Indian fictitious world with her huge literary results..

She has contributed a huge literary result and has distributed ten novels and other literary works. She was granted in 1978, National Academy of Letters Award for the novel Fire on the Mountain. Anita Desai is an individual of the Royal Society of Literature in London. She got the Sahitya foundation grant in 1978 for Fire on the Mountain. Ivory Merchant, and endures however not the most un-shot her novel In Custody.

Her characters rebel against laid out customs no matter what the aftereffects of such resistance. They battle against cultural goals that come in the method of opportunity. Withdrawal is a strong weapon for a considerable lot of these ladies characters. Desai's ladies need opportunity inside the local area of people, as the main way will prevail with regards to satisfying them as complete people. As a matter of fact, Desai's model of a liberated lady, Bimala in the novel Clear Light of Day (1980), is an unmarried lady. Her wedded ladies characters like Maya in Cry, the Peacock (1963), Monisha in Voices in the City (1965), Nanda in Fire in the Mountain (1977) and Sita in Where Shall We Go This Summer? (1975) become discouraged, fierce or foolish. Significant piece of Anita's fiction deals with the estrangement of middleclass ladies. This part follows Dr. Vandana Shiva's ecofeminism, which supplements the possibility of interconnectedness of ladies and nature. Ecofeminists interface their undertaking as a lot to the politically situated positions related with social ecology and eco-communism as to morally and profoundly arranged profound ecology. As Giorel Curran clarifies, ecofeminism is best separated into two classes to consider significantly various methodologies of its two focal talks which can well be applied to the novel: a) 'cultural feministic approach' as addressed by Nanda and Raka, two focal characters in the novel Fire on the Mountain representing the inborn association of ladies with nature and looks to make this association as the premise of another way to deal with nature, described by the mindful and enthusiastic abilities of the females; b) 'socio-ecofeminist approach' as addressed by Ila, the counter of Nanda's personality addressing something contrary to her who dismisses the male centric authority as a type of organic and cultural reductionistic undertaking. This approach assaults all types of mistreatment as an appearance of political, economic, social and authentic development (Curran 116).

Ila Das's rape in Desai's novel is mercilessly carried out in the darkness of the fields that are supposed to sustain life. The atrocities that the women suffer in Desai's novel find their culmination in Raka who sets the forest on fire in the end (Kaur, 389).

As Greta Gaard describes it: Ecofeminism's basic premise is that ideology which authorises oppressions such as those based on race, class, gender, sexuality, physical abilities and species which is the same ideology that sanctions the oppression of nature (1). Thus, this approach challenges intraspecies oppressions along with the patriarchal authentic dominations in the society. In the words of Dr. B. Ramachandra Rao, "Anita Desai evokes the necessary mood and elicits the right emotion from the reader through a series of objective descriptions" (10). Anita Desai is said to be associated mostly with psychological portrayal of women but in this novel Fire on the Mountain (1977) coconsciousness can be brought to limelight. Since there is much to analyse in the foregrounding of the landscape and interpretation of human action in non-human terminology integrating it with nature. There are different aspects of Anita Desai's

multifaceted writing. They include areas such as feminist approach, philosophical approach, psychological approach and the one, which is dealt with in this piece of writing , is an ecocritical approach. This interconnectedness is shown with profound symbolic representations of nature. The vicinities of her potential are best traced and judged by M.K. Naik: Anita Desai unravels the tortuous involutions of sensibility with subtlety and fineness and her ability to evoke the changing aspects of Nature matched with human moods is another of her assets, though her easy mastery of the language and her penchant for image and symbol occasionally result in precocity and over-writing (243). The concepts of nature, culture and gender in her novels are "historically and socially constructed and vary across and within cultures and time periods" (Bina Agarwal 123). Desai portrays dilemmas and doubts of woman who are misfits in their own way, who do not want to be heroic but all the time struggling for what they do not have for example love, affection, attention, acceptance, recognition and appreciation. Her novel focuses on the inner climate, the climate of sensibility. It's important to realise that mistreatment of the environment has involved the congruent mistreatment of those human beings associated with the natural world.

The novels of Anita Desai reveal her unique worldview, but at the same time confirm to the existing tendencies in modern fiction. Her novels are technical innovations which combine features of both novel and lyrical poetry and shift the reader's attention from men and events to a formal design (Ralph Freedom)

Desai is a touchy soul cognizant about the state of 'lady' in the public eye yet additionally the state of 'the earth's life force' in present day age. Desai is worried about ecology in large numbers of her works. Environmental lop-sidedness is depicted with a huge vision in the novel The Village by the Sea (1982). Desai through her novels requests to mankind to confront the truth and save the environment. Desai stands apart as a genuine representative of Ecocriticism:

She is a genuine offspring of Mother Nature. Brought into the world in Mussoorie, a position of rich green valleys, she has a profound connection with nature and nature impacts her literary craftsmanship exceptionally. She is essentially known for psychological novels . . . Yet, assuming we go in the profundity of her 79 analysis of the characters, we observe that it is almost connected with ecology. Through her novels, she proposes that the reason for every one of the physical, social, psychological and environmental issues is the demeanour of present day man towards nature (Vandana Beniwal 1). The comprehension of personhood is characterized by environmental entrapment and in this way investigation of the nature-support idea happens in the novel Fire on the Mountain. The transaction of considerations, sentiments and feelings is reflected in language, grammar and symbolism angles, which are in proof in the all-out system

of her accounts. In any case, in the novel Fire on the Mountain, there is a plenitude of pictures of nature, which allude to taking a gander at the novel through the Eco feministic focal point. Desai has recorded the characters with life giving actual settings, which are significant with importance and a changing variant of the cultural circumstances.

Desai investigates the dilemma of 20th century ladies. In this investigation nature and spot typify a longing for a feeling of spot in their heroes. Nature epitomizes the advancing connection between the abstract and the objective universes possessed by them. The change in the subject towards the end is from extreme inward to the bigger social issues present in the country.

Anita Desai's ladies are searching for a way to support them through association ship with scene. Scene and environs of Kasauli is a many-sided articulation of human life. Each person in the novel Nanda, Ila and Raka involve a disclosure and a misfortune, a state of being existent both previously and the present, a mindfulness and a self-development. Kasauli is the site on which the social personal history of Nanda and Ila seem honest to the social setting. The scene of Kasauli turns into the site for articulation of the general public's irresoluteness to the ladies condition. As Ortner calls attention to the natural or cultural contrasts among people:

The second status of ladies is a dish cultural reality. There is anyway an immense variety in the cultural ideas of ladies found all through the world. Ladies are given and even they acknowledge the second rate status in the public eye. In the novel, Fire on the Mountain, Nanda Kaul possesses Carignano, in the Kasauli slope station, a retreat away from the weights of her past homegrown distractions as spouse and mother. Desai depicts Kasauli as the stage where the authentic interaction goes through additional complexities and this is presented through a large number of pictures.

The psychological and obvious impacts of the pictures utilized help to determine cultural wealth expecting life for its own motivation. Scene gives a more brilliant exemplified vision of life. Nature and culture exist in the environment around. The scene of Kasauli gives space to comprehend individuals where they acknowledge one and 81 oddball one more piece of their own mentality. Pictures move and mediate among creative mind and view of the real world; insight and memory of at various times. Notwithstanding, this retreat is additionally a replay of the existences of numerous pioneer tenants of the house and its history of savagery. The geological area of the house, on an edge over the town, represents its separateness, which is a provincial inheritance from individuals in the town, the feeling of predominance and its dubious position separate and outside the field of play with day to day existence in the slope station. Nanda, the focal person considers Carignano being both the spot and a great time, its distant area a purposeful decision; the evasion of individuals and guests, like she is attempting

to quell recollections of her past from which she needs to be free at this point.

Nanda presently drives a day to day existence that is backlash to her feverish and tiring life as the spouse of Vice-Chancellor whose house she ran as an ideal master and a loyal mother of endless youngsters. To the rest of the world, she was an object of jealousy, "generally in silk, at the top of the long rosewood table in the lounge area, engaging his visitors" while what she wanted was simply to act naturally. Nanda's life was inadequate in spite of the fact that she was furnished with every one of the actual conveniences of life. She was relied upon to satisfy the job of a housewife, being the quintessential great Indian spouse. Ladies and land are seen as nurturers and accomplices for fortune of food, water, care and food. Maternal worries have abusively eclipsed Nanda's own interests. Maria Mies connects crafted by ladies with the useful connection to nature on the grounds that as indicated by her 'ladies not just gathered and consumed what filled in nature yet they made things grow' (16-17).

Confirming Edward Said's point that 'government is a demonstration of geological brutality' , the novel, shows that colonialism 'involves land dispossession, relocation, constrained settlement, as well as subjugation, assault, torment, and murder' (177). Colonialism has condemned and denounced the truth of everyday routine's battles and ways of encountering. Comparative also is Raka's ideal house, one that is much more meager and fruitless than Carignano: a consumed and darkened shell of a house annihilated by discharge on the slope close to Carignano. For Raka, the incredible granddaughter of Nanda, there is no limit set by the idea of house rather her home is the place that is known for nature where she sets her foot as a swashbuckler and voyager sometimes. Such sort of whipping of limits and going into the universe of nature certainly fixes the psychological mistreatment and inward psychological issues by and large.

The matured Nanda Kaul as opposed to Raka chooses just towards the fag end of her life to consume her time on earth at Carignano, in Kasauli alone. Nanda Kaul is stressed over the deforestation occurring in Kasauli, the foundation of a clinical examination place further disengages one from nature in the slopes however the fields stayed loaded with local area sentiments and close channels of correspondence. There is a feeling of dread toward the obscure in the fields where Ila resides. Nanda accepts she completed her family obligations long back and chooses to "be passed on to the pines and cicadas alone. She trusted she wouldn't stop" (3). Nanda "needed nobody and that's it. Whatever else came, or occurred here, would be an unwanted interruption and interruption" (3).

She likes "she could converge with the pine trees and could be confused with one. To be a tree, no more and no less, was all she was ready to attempt" (4). According to pundit Indira,

"Nanda's feeling of recognizable proof with the pine trees recommends her longing for outright quietness and withdrawal from life" (97).

Scene and Mindscape Nanda is drawn to Carignano for 'its infertility'. The desolate house is representative of the segregated existence of Nanda. The fruitlessness is related with the fundamental human condition - estrangement. Her singularity was broken at seeing a hawk or a splendid hoopoe. She comprehends that her incredible great girl, Raka would remain with her for certain days as the mailman upsets her promptly toward the beginning of the day. Smash Lal, the cook is the only one Raka feels at ease with. Raka, Nanda feels has become frail with the assault of typhoid fever. Desai depicts Nanda's hesitance at Raka's appearance and it is all around communicated through creatures in nature hence: "One long finger moved like a looking through bug over the letter on her lap, moved automatically as she attempted to stifle her displeasure . . ." .

As Nanda sits alone, she wishes to resemble the falcon to rest and be in charge and impersonate it with her eyes shut. Nanda is frantic for an existence without stresses. She is compelled to acknowledge Raka into her home. Her brain is loaded up with considerations about opportunity. It is Raka's lack of interest, her total freedom, which draws in her, which she longings for herself. With somebody like Raka she starts to feel a profound albeit mixed up proclivity and has no wish to see her disappear from her. To Nanda Kaul, Raka is her ideal reflected self which addresses what she needed: "Assuming Nanda Kaul was a hermit out of retaliation for a long existence of obligation and commitment, her great-granddaughter was a loner by nature, by intuition. She had not shown up at this condition by a long course of dismissal and penance, she was brought into the world to it, basically" . 84 A couple of days in Cardigan, Raka demonstrates that "she was at this point not the bug, the grasshopper kid. She developed as still as a twig" . Both Nanda and Raka generally stay away from one another; however Nanda has fostered a preference for her extraordinary granddaughter. Nanda and Raka, on this specific day sense "a copper shine that illustrated the shoulder of the slope in the east . . . an incensed brilliance in that cinereous dusk" . It is a timberland fire, a major one. It could either be crafted by poachers or hoodlums, not to mention dust storms. Pictures of bugs like reptiles, birds like falcons, parrots and "the topical picture of the 'fire' with its implications of viciousness and direness happen at ordinary stretches, advance notice the peruser of the approaching misfortune". The component of fire can be differentiated to the part of "The Fire Sermon" in Eliot's sonnet The Waste Land (1922) where fire proposes want. The desolateness

of the spot and the setting of Carignano uncover the unnatural, plastic, counterfeit world she had turned to live in.

Fundamental Elements of Nature and Predicament of Women

Ladies' extremist scientist Elizabeth Jackson, for instance, battles that most of Desai's female legends are "average Indian women who are at chances with the cultural principles which shape their lives. Her fiction attempts to unravel their muddled responses as far as possible constrained by culturally supported codes of genteel thought and direct" .

The encounters of Nanda Kaul, who is looking for a complete self, are organized in an example of symbolism. This example incorporates both individuals and items, and are indications of the acting idea. Raka's presence is instrumental in achieving the profound arousing in Nanda Kaul. Preceding her admitting being a liar, and her life an untruth, she is loaded up with worry for everybody and everything around her. By dismissing others, Nanda Kaul was dismissing herself. The acknowledgment of her requirement for Raka, achieves the otherworldly mindfulness which loans her the quiet and tranquillity she was looking for her entire life. Her defense for the bug uncovers it.

Then, at that point, becoming mindful of Nanda Kaul's opaline presence, it lifted itself upon to its rear legs, as though justifiably, and lifted its minuscule hands together under its jaw, diverting its serious head from one side to another as it concentrated on her with the very same tranquil interest that obvious her face. She put out her ringed hand and gave the lily a little shake, so the animal tumbled off into the leaves. There it would be protected from birds .

Nanda respects the opportunity of a hawk at Carignano, yet maybe her own craving to take off over her genuine spot, down with the ordinary undertakings of really focusing on others, hastens a fall. The vistas of Cardigan, instructed by the bird, lead just to 'ice and snow portrayed upon the sky' and to a 'plunging precipice', both proposing demise.

Raka fills in as the impetus in this novel. She drives Nanda Kaul to the revelation of truth. Raka is regularly alluded to as a bug, a cricket, a pet bug, which propose that she be totally at home with nature. Not at all like Nanda Kaul, she doesn't dream of plantations in Kashmir, yet is glad to enjoy the mind flight of turning into a wrecked saint. "I'm transport destroyed, Raka delighted. I'm wrecked and alone. She clung to a stone, my boat, alone in my boat on the ocean, she sang" . The differentiation between the shortfall of connections, and the "experience of each relationship as a nonappearance, is the division among depression and an interminable isolation, between temporary expectation or horrendousness and a super durable misery . . ." .

In Raka one observers a lady who rejects all jobs. Albeit this refusal has its ground in her youth encounters with the social request. This refusal is without disappoint. It is established in her powerlessness not exclusively to relate to the grown-up world yet in addition to associate with the offspring of her age. Her long disease vindicated her of any need to do as such. Raka has accomplished that natural fellowship with the scene, which Nanda Kaul had thought about coming to in her advanced age, after the demise of her better half. Raka, the youngster is free, if by some stroke of good luck briefly, from the world "of school, of inns, of discipline, request and acquiescence" . Having left it behind she feels no inconvenience and is completely calm. Raka is very much like Gauri Mashi in the story Gauri Mashi composed by Chitra Banerjee Divakaruni who one day escapes from her significant other's home being informed every time by her better half. As a clean female unfit to bear kids by guiding her arm into the circled anchor rope of a boat to the place that is known for water once more. Gouri Mashi represents a nonconformist like a relentless streaming river similarly as Raka represents a nonconformist in burning down the woods. The five components of nature according to Indian way of thinking expect significance to give solidarity to the characters and in this way ecology and nature mirror their significance in living souls.

Raka's affection for isolation turns into a declaration of her endeavour to accomplish presence of mind. What's more, this she has had the option to get in Carignano. She thought about that it was awesome of spots she had lived for such a long time and for all times. "It had in it its systematic starkness something she viewed as limiting, confining. It was basically as dry and spotless as a nut however she burst forward from its shell like an anxious piece, little and dangerous" (91). Kasauli apparently offers discharge from social arrangements that are inseparably connected with man centric structures. Raka is aware of the requests made by the social world, and conversely, through the scene of Kasauli which is illustrative of builds, social and orientation based consequently looks to free herself: "... she disregarded that extraordinary hot plain underneath. Her eye was on the core of the agaves, that focal knife protected by a ring of bended spikes, on the distortions of the singed pine trunks and the incapacitated mentalities of the stones" (48).

... she stooped now to get a dazzling apricot from the short, dry grass. It had been crushed by its fall and she flung it away. Immediately, a brilliant hoopoe, seeing its flight and glimmer, struck down at it and tore at its splendid tissue, then, at that point, took off with a bump in its nose, it had its home in the overhang outside her window, she knew, however didn't remain to watch the little birds took care of. It was a sight that didn't fill her with please.

Their shouts were sharp and could enrage (4). The tearing of tissue is illustrative of ladies being the casualties of man centric framework and the forthcoming risk of death of Ila by assault.

Whenever the mailman approaches Carignano, Nanda hates his interruption even before she realizes that the letter he conveys reports the appearance of Raka:

He dialled back, drawing out her aggravation, keeping behind a little student who had emerged out of the slope and was dallying school wards absent a lot of feeling of direction or bearing for he would stop now to get a level stone, presently to timid it at a chipmunk, then, at that point, climb mostly up a slope for a prickly snatchful of raspberries, then, at that point, slide down on his base into the trench and quest for a brilliant creepy crawly (5).

The student halfway expects Raka, who likes to meander just so randomly. Tossing stones at a chipmunk, he likewise hints the students who will bother Ila on her last game changing walk, which centres around the occasion of Ila's assault. This early scene of the students disrupting the mailman and the mailman encroaching upon an elderly person, with a synchronous 'consuming' on the meadow, mirrors the peak: the school children harassing Ila and a man assaulting her, while the woodland consumes. D. Maya says that "in the summoning of pictures that deciphered the human circumstances and in the powerful fictionalization of the human problem, Anita Desai's ability is exceptional" (135-136). Nanda needed to stand by listening to the monkeys and parrots piercing voices however she chooses to stay liberated from all marks of disgrace. Raka and Ila are unsettling influences for Nanda. As indicated by Hans Furth:

. . . at each degree of advancement, the equilibration component is usable in encouraging transformation, however as improvement continues towards the most elevated level of mental working, equilibration turns out to be logically more satisfactory in empowering the life form to adjust to a more extensive scope of inside and outside unsettling influences" (Stanley et al.).

Nature settles Nanda's functional self somewhat however Raka accomplishes entirely a solid feeling of oneself and structures a sound mental picture of versatile convenience with nature.

Endangered Self in an Endangered World

Howarth specifies that "a future feeling of cultural history might be scene ecology which dodges differentiation among natural and upset districts and uses another spatial language to portray land by shape, intersection, and change" (Glotfelty and Fromm 76). Nanda is drawn to Carignano for 'its fruitlessness'. The desolate house is emblematic of the single existence of Nanda. According to pundit Indira, "Nanda's feeling of recognizable proof with the pine trees proposes her longing for outright quietness and withdrawal from life" (Indira 97). The singularity, the unquenched hunger for alleviation can be differentiated to "The Burial of the Dead", a part of The Waste Land where Eliot communicates a fine juxtaposition:

- Where the sun beats,

- What's more, the dead tree gives no safe house,
- He crickets no help, And the drystone no sound of water.

The infertile scourged actual scene gives the level of Nanda's problem - physical, social, cultural and environmental. Raka invests her energy conversing with Ram Lal and meanders through the slopes. Male centric society has taken on available resources to enslave and smother ladies and nature. As Vandana Shiva says "science and manliness were related in control over nature and femineity, the ideology of science and orientation supported one another" (17). So have modern turn of events and destruction of woodlands oppressed the two ladies and nature. The industrial facility on the slope duplicates 'a square mythical beast, boxed, bricked and stirred up' (42). It is representative of innovation. Advancement and commercialisation of economy mirrors the provincial coherence. Nature and ladies are viewed as detached objects are decreased to simple assets in the divided model of improvement rather than being makers and sustainers of life.

Ila's assault is likewise a negative remark on the formative model as is addressed by natural idea by the event of a residue storm which throws a hen, its cackles grabbed out of its bill, broke like glass. Ila's essential trademark is her shrieking voice and its demonstrative of the way that the attacker will choke her. She is considered as a part of the creatures as the hen, which is representative of getting killed for human fulfilment and delight of craving. It prompts the portrayal of man as a narrow minded being to the degree that he kills in any event, for delight and for power rather dissimilar to the wild creatures that chase solely after hunger. Man has truth be told made awkwardness in nature generally and this is exemplified by Desai who distinguishes Raka in a roundabout way with dust storms and with fire and interfaces these two natural peculiarities with one another.

Desai prefigures the assault on Ila, the abuse of womanhood as a further study of the modernisation and political changes when Ila strolls toward Nanda's home see the Raka. The incredible granddaughter of Nanda glad to see and have organization after numerous long years and the town young men brutally provoking Ila, by taking her umbrella. This horrifyingly dehumanized metonymy for IIa is uncovered in these lines:

The ladies characters in the novel are decodified through symbolism to uncover their internal cognizance. Lover recognizes that "There is in her a determined quest for the most fitting images and pictures in the outflow of the underground and the psyche".

Nanda and Raka keep away from one another. Nanda and Raka, sense "a copper shine that illustrated the shoulder of the slope in the east . . . an enraged brilliance in that cinereous

sundown" upon the arrival of the backwoods fire. Pictures of bugs like reptiles, birds like falcons and parrots, and "the topical picture of the 'fire' with its undertones of brutality and direness happen at standard spans, advance notice the peruser of the approaching misfortune" (Indira). The novel is an inventive show-stopper which entwines talk on ladies and the environment to give a road to conversation of the different types of social bad form existent in Indian culture. Land gives emotional impressions. The flawless nature of spot reshapes and upholds the intricacies in the existences of individuals and society. Nature re-establishes and recuperates in the midst of outrageous trouble. To Nanda, Ila's demise resembles the fire that has consumed the slope. The little youngster sees Nanda "on the stool with her head hanging, the dark telephone hanging, the long wire hanging" . Nanda Kaul accepted she had at long last characterized herself which was sufficiently bogus; this confirmation is shaken by the passing of Ila Das and by Raka, the envisioned perfect partner, who all through the excursion had would not enter the conjured up universe of Nanda Kaul. Control, destruction, viciousness and oppression are a vital part of lady's life. The recuperation of life's difficulties relies upon acknowledgment of the central ladylike guideline.

Conclusion

Anita Desai's novel "Fire on the Mountain" investigates into the complexities of human sentiments and bonds through its evaluation of compositions such as aging, family dynamics, isolation, memory, independence, the power of nature, and cultural identity. The ecological world, signifies by the mountainous setting, purposes as an effective background for the tale. It exemplifies both comfort and reflection, offering Nanda moments of scrutiny and linking with the greater might of nature.

Conclusively, "Fire on the Mountain" highlights the rigidity between convention and innovation, discovering the difficulties of cultural individuality. The people struggle with their Indian heritage and the effect of changing community values and Western influences. Through skilful storytelling and nuanced characterization, Anita Desai skills a forceful narrative that enquires into the depths of human experience. "Fire on the Mountain" prompts booklovers to anticipate themes of aging, family, isolation, memory, independence, nature, and cultural identity, parting an eternal impression of the complexities and emotional landscapes of the human condition.

References

1. Sethi, Sunil (30 November 2013). "Clear Light of Day is about time as a destroyer, as a preserver: Anita Desai". *India*

Today. Retrieved 1 December 2021.

2. "Revisiting Anita Desai". www.rediff.com. Retrieved 21 November2020.
3. Guardian Staff (19 June 1999). "A passage from India". The Guardian. Retrieved 21 November 2020.
4. "After Anita, Kiran; Ashvin Desai goes the write way". News18. Retrieved 1 December 2020
5. "Author Ashvin Desai loses war with cancer". Zee News. 12 October 2008. Retrieved 1 December 2020.
6. "'Shayari koi mardon ki jaageer nahi': Shabana Azmi gets nostalgic as cult film In Custody completes 25 years". The Statesman. 16 April 2019. Retrieved 1 December 2020.

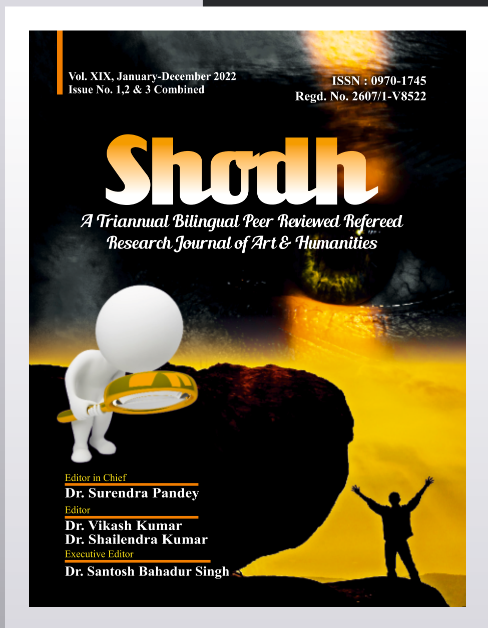

Published by

History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com